KASHINATH SINGH KRIT 'UPSANHAR' (UPANYAS) KA BHASHIK VISHLESHAN

A Dissertation submitted to the University of Hyderabad in partial fulfilment of the degree of

MASTER OF PHILOSOPHY

In

Hindi

By

ASHISH DWIVEDI (20HHHL17)

PROF. GAJENDRA KUMAR PATHAK
Head of the Department

PROF. C. ANNAPURNA
Supervisor

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad- 500 046

Telangana (India)

काशीनाथ सिंह कृत ‘उपसंहार’ (उपन्यास) का भाषिक विश्लेषण

हैदराबाद विश्वविद्यालय में एम.फिल.(हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

2022

आशीष द्विवेदी

Reg.- 20HHHL17

प्रो. सी. अन्नपूर्णा

निर्देशक

हिंदी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500 046

तेलंगाना (भारत)

Certificate

This is to certify that the dissertation entitled **KASHINATH SINGH KRIT 'UPSANHAR' (UPANYAS) KA BHASHIK VISHLESHAN (काशीनाथ सिंह कृत 'उपसंहार' (उपन्यास) का भाषिक विश्लेषण)** submitted by Ashish Dwivedi with Registration number- 20HHHL17 in partial fulfilment the requirements for the award of Master of Philosophy in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

The dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

PROF. C. ANNAPURNA

Head of the Department

Pro. Gajendra Kumar Pathak

Dean of the School

Pro. V. Krishna

<u>DECLARATION</u>

I, Ashish Dwivedi hereby declare that this Dissertation entitled **KASHINATH SINGH KRIT UPSANHAR (UPANYAS) KA BHASHIK VISHLESHAN (काशीनाथ सिंह कृत 'उपसंहार' (उपन्यास) का भाषिक विश्लेषण)** submitted by me under the guidance and supervision of **Prof. C. Annapurna** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/Infilbnet.

Date Signature of the Student

Place Registration no. 20HHHL17

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	**7-9**
अध्याय 1 : मिथक की अवधारणा और साहित्य	**10-30**
1.1 मिथक का परिचय एवं स्वरूप	
1.2 मिथक और साहित्य का अंत:संबंध	
1.3 मिथक और साहित्य में समानता के तत्व	
1.4 मिथक और साहित्य में विभेदक तत्व	
1.5 पुराण, इतिहास और मिथक में अंत:संबंध	
1.6 मिथक उपन्यास और काशीनाथ सिंह	
1.7 काशीनाथ सिंह का परिचय	
1.8 काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व	
1.9 काशीनाथ सिंह का रचना संसार	
अध्याय 2 : मिथक उपन्यास और भाषिक विश्लेषण	**31-61**
2.1 उपन्यास की भाषा	
2.2 पौराणिक स्तर पर	
2.3 संस्कृति के स्तर पर	
2.4 मिथक के स्तर पर	
2.5 शैली के स्तर पर	

अध्याय 3 : उपसंहार उपन्यास का भाषिक विश्लेषण **62-109**

3.1 शब्द के स्तर पर

3.2 मिथकीय शब्द

3.3 विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ

3.4 शब्द शक्ति

3.5 पर्यायवाची

3.6 मुहावरे

3.7 वाक्य के स्तर पर

3.8 प्रोक्ति के स्तर पर

उपसंहार **110-114**

संदर्भ सूची **115-117**

परिशिष्ट **118-123**

- साक्षात्कार

भूमिका

हिंदी में 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से उपन्यास लेखन की शुरुआत मानी जाती है। प्रारंभ में जासूसी, एयारी, तिलिस्मी उपन्यास लिखे जाते थे। यह विधा अत्यंत अल्प समय में ही पाठकों के बीच लोकप्रिय विधा बन गयी। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को नयी दिशा एवं दृष्टि प्रदान की। उन्होंने कथा को मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर उसे सामाजिक यथार्थ जीवन के साथ जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसी को आगे चलकर अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल, निर्मल वर्मा आदि ने आगे बढ़ाया। उपन्यास प्रयोगशील विधा के रूप में जानी जाती है । काशीनाथ सिंह ने भी एक नया प्रयोग अपने उपन्यास लेखन में किया । काशीनाथ सिंह उपन्यास के संरचनात्मक वैशिष्ट्य, अपने कथ्य के अनूठेपन, पात्रानुकूल भाषा शैली के कारण पाठक वर्गों का ध्यान विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। काशीनाथ सिंह अपनी भाषा की विशिष्टता के कारण अपनी पीढ़ी के एक विशिष्ट रचनाकार हैं। उनकी विशिष्टता के पीछे उनका पचास वर्षों का रचनात्मक संघर्ष है। भाषा की विशिष्टता, स्पष्टता और विचारों की प्रतिबद्धता इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इनका रचनात्मक साहित्य अनेक विधाओं में फैला हुआ है। इन्होंने मुख्य रूप से तीन विधाओं में लेखन किया ; कहानी, उपन्यास, संस्मरण। काशीनाथ सिंह शुरुआत से ही अत्यंत शिल्प सर्जक रहे हैं। अपने लेखन के दौरान काशीनाथ सिंह अलग-अलग शिल्पों और कथा-वस्तुओं का प्रयोग करते रहे हैं। जिसमें भाषा की विशिष्टता सर्वप्रमुख है।

इसी क्रम में मैंने अपने शोध विषय 'काशीनाथ सिंह कृत 'उपसंहार' उपन्यास का भाषिक विश्लेषण' का चयन किया है। जिसमें मेरा प्रयास काशीनाथ सिंह के 'उपसंहार' उपन्यास की भाषा व शिल्प का विश्लेषण करना रहा है। चूंकि इस उपन्यास का कथानक 'उत्तर महाभारत' की कृष्ण कथा को आधार बनाकर लिखा गया है जो एक मिथक पर आधारित है। इसलिए इस शोध में मिथक पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। साहित्य के साथ मिथक के अंत:संबंधों की भी चर्चा किया गई है। काशीनाथ

सिंह ने मिथक को नये संदर्भ में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। काशीनाथ सिंह के कृष्ण सामान्य कृष्ण से बहुत अलग हैं जिसकी चर्चा इस उपन्यास में की गई है।

उपरोक्त विषय को ध्यान में रखते हुए मैंने अपने शोध कार्य को तीन अध्यायों में विभाजित किया है । जिसका प्रथम अध्याय 'मिथक की अवधारणा और साहित्य' है। इसके अंतर्गत उप-अध्याय मिथक का परिचय एवं स्वरूप, मिथक और साहित्य का अंतःसंबंध, गद्य साहित्य में पुराण, इतिहास और मिथक, मिथक उपन्यास और काशीनाथ सिंह, काशीनाथ सिंह की जीवनी, काशीनाथ सिंह का रचना संसार है। इस अध्याय के अंतर्गत मैंने मिथक के बारे में विस्तार से चर्चा की है। इसके साथ ही साहित्य के साथ मिथक के संबंध को बताने का प्रयास किया है। साहित्य में मिथक, इतिहास, पुराण के अंत:संबंधों को बताया है। काशीनाथ सिंह की जीवनी और उनके रचना संसार को भी विस्तार से बताया है।

द्वितीय अध्याय 'मिथक उपन्यास और भाषिक विश्लेषण' है। इसके अंतर्गत उप-अध्याय उपन्यास की भाषा, पौराणिक स्तर पर, संस्कृति के स्तर पर, मिथक के स्तर पर एवं शैली के स्तर पर है। इस अध्याय में मैंने उपन्यास की भाषा के बारे में विस्तार से बताया और पौराणिक स्तर पर, संस्कृति स्तर पर, मिथक के स्तर पर मैंने 'उपसंहार' उपन्यास का विश्लेषण किया है। उपन्यासकार ने पौराणिक कथा के आधार पर ही इस उपन्यास की रचना की है। पुराणों में कृष्ण को जिस रूप में दिखाया गया है, उसके उलट काशीनाथ सिंह ने कृष्ण के व्यक्तित्व का चित्रण किया है।

तृतीय अध्याय 'उपसंहार उपन्यास का भाषिक विश्लेषण' है। इसके अंतर्गत उप-अध्याय 'शब्द के स्तर पर, मिथकीय शब्द, विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ, शब्द शक्ति, पर्यायवाची, मुहावरे, लोकोक्तियां, वाक्य, प्रोक्ति आदि। इसके स्तर पर 'उपसंहार' उपन्यास का भाषिक विश्लेषण किया है। काशीनाथ सिंह ने किस तरह के शब्दों का प्रयोग किया है? मिथक के कौन-कौन से शब्द हैं? इन सभी का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है। काशीनाथ सिंह की अभिव्यक्ति के कुछ नमूनों को भी संदर्भ के रूप में प्रस्तुत

किया गया है। भाषा पर काशीनाथ सिंह की पकड़ का अंदाजा उनके शब्द चयन से पता चलता है। बोलचाल की भाषा का अंदाजा पर्यायवाची, मुहावरे, वाक्य प्रयोग, प्रोक्ति का अध्ययन करने पर पता चलता है। काशीनाथ सिंह ने अभिव्यक्ति की जो शैली विकसित की वह अपने आप में विलक्षण है। इस उपन्यास का विश्लेषण करने पर हमें काशीनाथ सिंह के भाषायी ज्ञान का पता चलता है। लोक की भाषा पर उनकी पकड़ और संस्कृति के ज्ञान की जानकारी भी हमें इसके द्वारा प्राप्त होती है।

अंत में निष्कर्ष के अंतर्गत उपरोक्त अध्ययन के निचोड़ को लिखने का प्रयास किया गया है। साथ ही 'संदर्भ ग्रंथ-सूची' के अंतर्गत आधार ग्रंथ और सभी सहायक ग्रंथों का भी उल्लेख किया गया है।

इस पूरे अध्ययन के क्रम में मेरी शोध निर्देशिका प्रो. सी. अन्नपूर्णा मैडम का सानिध्य लगातार मिलता रहा। कोरोना काल के दौरान मैडम से फ़ोन के माध्यम से लगातार संपर्क होता रहा, उन्हीं के मार्गदर्शन से यह शोध कार्य पूरा हो सका है। कोरोना काल की विपरीत परिस्थितियों में हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय का सहयोग जिस तरह से रहा उसे भुलाया नहीं जा सकता है। हिंदी विभाग के सहयोग के बिना यह शोध कार्य पूरा होना संभव नहीं था। काशीनाथ सिंह जी का साक्षात्कार के लिए विशेष रूप से आभार कि उन्होंने अस्वस्थ होने के बावजूद अपना बहुमूल्य समय दिया। इस रचनात्मक और यादगार मुलाकात को संभव बनाने के लिये आशीष त्रिपाठी सर और पल्लव नंदवाना सर का भी विशेष रूप से धन्यवाद।

अंत में मैं अपने परिवार के सदस्यों तथा सभी दोस्तों का विशेष रुप से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य को पूरा करने में मेरा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग किया।

-आशीष द्विवेदी

अध्याय-1

मिथक की अवधारणा और साहित्य

प्रत्येक युग का मिथक अपने युग का वास्तविक परिचय होता है। मानवीय सभ्यता का पूरा इतिहास मिथकों के द्वारा समझा जा सकता है। मानवीय सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण के साथ मिथकों का गहरा संबंध रहा है। आधुनिक युग में भी यही संबंध बरकरार है। पहले मिथक की चर्चा पौराणिक और अलौकिक कथाओं के अंतर्गत होती थी लेकिन आज मिथक की चर्चा सामाजिक और मानवीय यथार्थ के साथ होती है। पुराने मिथक नये अर्थ की अभिव्यक्ति करते हुए मानवीय यथार्थ से संबंध स्थापित कर रहे हैं। मानवीय भावनाओं की सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति करने के कारण ही आज मिथकों का प्रयोग साहित्य में बढ़ गया है। मानव अपने जीवन में अपने ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जगत से अनुभव प्राप्त करता है और इन्हीं अनुभवों के आधार पर मिथकों में नये अर्थ का सृजन करता है। सरल शब्दों में कहें तो पुराकथाओं का वह तत्व जो नवीन स्थितियों में नए अर्थ का वहन करता है, मिथक कहलाता है।

1.1 मिथक का परिचय एवं स्वरूप

'मिथक' शब्द अंग्रेजी के 'मिथ'(Myth) शब्द से निकला हुआ है। 'मिथ' शब्द का उद्भव यूनानी शब्द 'मिथॉस'(Mythos) से हुआ, जिसका अर्थ है 'मुँह से निकला हुआ'। जिसका संबंध मौखिक कथा से है। हिंदी में मिथक के लिए 'पुरावृत्त', 'पुराकथा', 'कल्पकथा', 'देवकथा', 'धर्मकथा', 'पुराणकथा', 'पुराख्यान' आदि अनेक शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं किंतु इन शब्दों से पूरे अर्थ का सम्प्रेषण नहीं हो पाता है। इसलिए हिंदी में मिथक शब्द का प्रयोग ही समीचीन है।

'भारतीय मिथक कोश' की रचयिता डॉ. ऊषा विद्यावाचस्पति के अनुसार "संस्कृत के 'मिथ' शब्द के साथ कर्तावाचक 'क' प्रत्यय जुड़ जाने से इसका निर्माण हुआ है। संस्कृत में 'मिथ' शब्द का अभिप्राय प्रत्यय ज्ञान के लिए भी होता है तथा दो तत्वों को सम्मिलित करने के लिए भी। मिथक के संदर्भ में दोनों ही अर्थ जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। वह लौकिक तथा अलौकिक तत्वों का सम्मिश्रण है। लौकिक तत्व प्रत्यय अनुभूति है तो अलौकिक 'अध्यात्म तत्व'। दोनों का सम्मिश्रण ही मिथक में दृष्टिगोचर होता है।"[1]

शंभुनाथ 'मिथक और आधुनिक कविता' पुस्तक में लिखते हैं- "जब से मनुष्य ने कुछ कलात्मक शब्द अथवा कथा कहना शुरू किया तब से मिथक द्वारा सामाजिक यथार्थ के नए-नए प्रतीकात्मक या सांकेतिक रूप व्यक्त हो रहे हैं। मिथक का अर्थ उस कथ्य में निहित है, जो मनुष्य व्यक्त करना चाहता है। वह जिस भाषा में व्यक्त करना चाहता है वह भले ही अवैज्ञानिक अथवा सतह पर झूठी लगे, किन्तु उसका कथ्य सच्चाई से भरा होता है। मिथक को मनुष्य के एतिहासिक अस्तित्व का सामाजिक कथ्य मानना चाहिए।"[2]

मनुष्य आदिम काल से ही, जब इतिहास लेखन प्रारंभ नहीं हुआ था, आख्यानों, मिथकों और गाथाओं के माध्यम से अपनी अतीत की कथा स्मृतियों को यथासंभव सुरक्षित रखता रहा है। इतिहास, पुराण, महाकाव्य, कथा साहित्य में मिथकीय प्रयोग इसके प्रमाण है।

डॉ. नगेन्द्र ने मिथक को परिभाषित करते हुए लिखा है- "मिथक का अर्थ है ऐसी परंपरागत कथा जिसका संबंध अति प्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलतः आदिम मानव के समिष्टि-मन की सृष्टि है जिसमें चेतना की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है।"[3] मिथक पर और विस्तार से चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है- "मिथक की रचना उस समय हुई जब मानव और

---

[1] भारतीय मिथक कोश, उषा विद्यावाचस्पति, पृष्ठ-21

[2] मिथक और आधुनिक कविता, शंभुनाथ, पृष्ठ-107

[3] मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-240

प्रकृति के बीच की विभाजक रेखायें स्पष्ट नहीं थी दोनों एक सार्वभौम जीवन में सहभागी थे। वे परस्पर सहयोग एवं संघर्ष के सूत्रों से बंधे हुए थे और चेतन मानव का मन अज्ञात रूप से प्रकृति की घटनाओं को अपने जीवन की घटनाओं और अनुभवों के माध्यम से समझने का प्रयास करते थे। समष्टि मन द्वारा प्रकृति के तत्वों और घटनाओं के मानवीकरण की यह अचेतन प्रक्रिया ही मिथक रचना का मूल है।"[1]

मिथक के संदर्भ में कहा जाता है कि इसकी रचना में कल्पना का अनिवार्य योगदान रहता है फिर भी उसकी प्रतीति सत्य रूप में ही होती है। कल्पना और सत्य अथवा भागवत सत्य और वस्तुगत सत्य की अभेद प्रतीति मिथक की प्राकल्पना का आधार तत्व है।

हिंदी में मिथक शब्द का पहला प्रयोग आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने किया। शंभुनाथ लिखते हैं- "हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सर्वप्रथम 'मिथ' का हिंदीकरण करते हुए मिथक शब्द सुझाया था। भारोपीय भाषा का एक शब्द है 'मुथ' जिसका अर्थ कल्पना करना बताया गया है। दुनिया की सभी पुरानी संस्कृतियों में आदिकल्पनाओं का एक बड़ा भंडार है जिसने आधुनिक जीवन को प्रभावित कर रखा है।"[2]

मिथक से संबंधित विभिन्न पाश्चात्य विचारकों के विचार इस प्रकार हैं- नृतत्वशास्त्री लेवी स्त्रास ने मिथकों के अध्ययन के माध्यम से विभिन्न आदिम संस्कृतियों की संरचनाओं का अध्ययन तथा उनकी परस्पर तुलना भी की है। इस प्रकार मिथक धार्मिक आख्यानों तथा कर्मकांडों के रूप में संस्कृति के अंग मात्र नहीं कहीं-कहीं पूरी संस्कृति की प्रकृति के परिचायक भी बन जाते हैं।[3] दुर्खीम और अन्य समाजशास्त्रियों ने माना है कि मिथक सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण तथा संचालन के लिए गढ़े गए हैं। ये किसी मानव समाज की सामूहिक अनुभूतियों से उपजते हैं और उसे एक इकाई में भी बांधते हैं।[4]

---

[1] मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-240

[2] मिथक और आधुनिक युग, शंभुनाथ, पृष्ठ- 99

[3] हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, अमरनाथ, पृष्ठ- 282

[4] वही, पृष्ठ- 282

मिथक किसी भी संस्कृति की समझ और पहचान के लिए उपादेय हो सकते हैं क्योंकि इनमें ज्ञानेंद्रियों के जटिल और वैविध्यपूर्ण आद्य अनुभव-पुंज निहित हैं। मानव समाज और उसके संस्थागत विकास रूपों के अध्ययन में मिथकों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। मिथक आलोचक डॉ. रमेशकुंतल मेघ ने मिथकों की मूल्यवत्ता को स्थापित करते हुए लिखा है- "मिथक किसी भी समाज की संस्कृति के आधार गठन या सरंचना को प्रकट करते हैं, जिसके ऊपर उसके उपरूपों के कला, धर्म, विज्ञान, क़ानून, नैतिकता, के विपुल ऐश्वर्यों वाले स्वर्णयुगीन महान प्रासाद खड़े किये हैं।"[1]

शंभुनाथ ने 'मिथक और आधुनिक युग' पुस्तक में मिथक के तीन लक्षण बताएं हैं- "पहला, मिथक लोकविश्वास पर आधारित होते हैं। दूसरा, मिथक में कोई तर्क नहीं होता है, ये तर्कातीत होते हैं। तीसरा, निर्बुद्धिपरक होते हुए भी हर मिथक एक सार्वभौम संदेश देता है। वह एक न एक जीवन संघर्ष और सौंदर्य की कथा कहता है। हर मिथकीय कथा बहुपर्तदार होती है।"[2]

डॉ. नगेन्द्र ने मिथक के दो भेद किये हैं-

- प्राकृतिक मिथक
- धार्मिक मिथक

धार्मिक मिथक के दो उपभेद हो सकते हैं, उपास्य देवों के स्वरूप से संबंध मिथक तथा कर्मकांड-संबंधी मिथक। इसके अतिरिक्त सृजन-प्रक्रिया के अनुसार भी दो स्पष्ट भेद हो जाते हैं- "मौलिक मिथक सामूहिक अचेतन की सृष्टि हैं और अनुषांगिक मिथक जिनकी रचना व्याक्तिक अचेतन या अवचेतन द्वारा होती है। आद्यबिम्ब-रूप मिथक, जो भारतीय, यूनानी तथा सामी जातियों के प्राचीन वांग्मय में

[1] मिथक और भाषा, निबंध- मिथक और मनोविश्लेषण, पृष्ठ-45-46

[2] मिथक और आधुनिक युग, शंभुनाथ, पृष्ठ- 90

मिलते हैं, मौलिक मिथक हैं और परवर्ती कवियों ने भाव-समाधि की स्थिति में जिन मिथकों की सृष्टि की है वे आनुषांगिक मिथक हैं।”[1]

1.2 मिथक और साहित्य का अंतःसंबंध

मिथक सम्पूर्ण मानव जाति की सृजनात्मक सृष्टि है तथा साहित्य में भी सृजन ही सर्वोपरि है इस कारण मिथक और साहित्य दोनों 'सृजन' की समान भाव भूमि पर स्थित है। साहित्य में मिथक का प्रयोग आरंभ से ही होता रहा है। साहित्य का आरंभ मिथक से हुआ या साहित्य मूलतः मिथक रूप ही था। भारतीय साहित्य का आदि रूप वैदिक मिथकों में प्राप्त होता है और यूरोपीय साहित्य का मूल रूप भी होमर-पूर्व काल के यूनानी मिथकों में मिलता है। वैदिक साहित्य का आधारभूत मिथक है देवासुर-संग्राम। अमेरिकी आधुनिक समीक्षक रिचर्ड चेंज का कहना है कि मिथक ही साहित्य है। “साहित्य का शुद्ध रूप मिथकात्मक ही होता है और उसी के आधार पर साहित्य या कला का सही-सही मूल्यांकन होना चाहिए। मिथक के अतिरिक्त साहित्य या कला में जिन तत्वों की खोज की जाती है वे उसके अंतरंग तत्व नहीं हैं।”[2]

डॉ. नगेन्द्र का विचार है कि केवल आदि युग के कवि ने नहीं वरन् प्रत्येक युग के कवि ने अपने ढंग से मूलतः मिथक-रचना ही की है। “होमर ने ‘इलियड’ या ‘ओडिसी’ में वर्जिल ने ‘ईनीड’ में, दांते ने ‘दिविनिआ कॉमेडियन’, मिल्टन ने ‘पैराडाइज लॉस्ट’, शैले ने ‘प्रोमीथिअस अनबाउंड’ और इलियट ने ‘वेस्टलैंड’ में अपने-अपने देशकाल के रागात्मक उपकरणों और भाषिक साधनों के आधार पर एक प्रकार से मिथक-रचना ही की है। भारतीय परिदृश्य में देखें तो वैदिक कवि के सूक्तों में, वाल्मीकि-व्यास के रामायण-महाभारत में, कालिदास के ‘कुमार संभव’, तुलसीदास के ‘रामचरितमानस’, प्रसाद की

---

[1] मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-249

[2] मिथक और साहित्य,डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-256

‘कामायनी’ और पंत के ‘लोकायतन’ में विभिन्न युगों के सामूहिक संस्करों तथा भाषिक उपकरणों के अनुरूप, प्रकारांतर से, मिथक-सृजना की निरंतरता व्याप्त है।”[1]

1.3 मिथक और साहित्य में समानता के तत्व

मिथक के समान साहित्य भी चिरंतन सत्य और सामयिक सत्य का संगम तीर्थ है। दोनों ही युगीन सत्य के साथ एकात्म होकर प्रकट होते हैं। साथ ही दोनों मानव जीवन के सार्वभौम अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। साहित्य और मिथक में गहरा संबंध है और दोनों ही प्रतीयमान सत्य के वाहक हैं। इनके प्रभावों को वस्तुतः न सत्य ज्ञान माना जा सकता है और न मिथ्या ज्ञान। मिथक और साहित्य दोनों में कल्पना का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। डॉ. नगेन्द्र ने साहित्य और मिथक में निम्न स्वरूपगत समानताएं बतायी है जो इस प्रकार है:-

“1- कला की विषय वस्तु प्राकृतिक होती है और उसकी रूप रचना मानवीय। कला प्रकृति का अनुकरण है। मिथक में भी प्रकृति को मानवीय रूप प्रदान करने का व्यवस्थित प्रयास रहता है।

2- काव्य के संरचनात्मक विधान का निर्माण एक प्रकार से मिथकीय तत्वों से होता है, क्योंकि काव्य-रचना की प्रक्रिया मूलत मिथक की निर्मिति-प्रक्रिया ही है। इलियट का 'मूर्त-विधान' और भारतीय काव्यशास्त्र का 'विभावना-व्यापार' मिथक रचना के ही शास्त्रीय नाम है।

3- मिथक में अर्थ को रूप से पृथक नहीं किया जा सकता, मिथक रूप ही उसका अर्थ है। इसी तरह काव्य के अर्थ को भी अलग नहीं किया जा सकता। दोनों में भाव और बिंब प्रतीक और वस्तु का पूर्ण एकात्म्य रहता है।”[2]

---

[1] मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-256

[2] मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-258

मनोविश्लेषण के सिद्धांत के आधार पर मिथक और साहित्य की रचना प्रक्रिया की व्याख्या करने पर स्पष्ट होता है कि अचेतन प्रवतन संस्कारों से प्रेरणा ग्रहण करने के कारण दोनों की रचना प्रक्रिया में समानता पायी जाती है। जिस प्रकार मिथक के निर्माण के मूल में सामूहिक अचेतन के संस्कार विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार साहित्यकार भी रचना प्रक्रिया के दौरान किसी न किसी अंश में अचेतन मन के संस्कारों से प्रभावित रहता है।

1.4 मिथक और साहित्य में विभेदक तत्व

मिथक जहाँ सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्ति है वहाँ साहित्य काफी अंशों में वैयक्तिक अवचेतन की ही नहीं वैयक्तिक चेतन की भी सृष्टि है। साहित्य का उद्देश्य जहाँ सौन्दर्य की सृष्टि करना है वही मिथक का उद्देश्य जातीय विश्वास की अभिव्यक्ति का माध्यम है। साहित्य के अनेक रूप ऐसे हैं, जिनमें मिथकीय तत्व नहीं होता है और इसी प्रकार मिथकीय वांग्मय में भी ऐसी प्रचुर सामग्री है जिनमें साहित्य के गुण का प्रायः अभाव मिलता है। काव्य भाषा और मिथक भाषा में एक सीमा तक समानता ही है क्योंकि अलंकारिक और लाक्षणिक प्रयोगों के संदर्भ में निश्चय ही दोनों में घनिष्ठ संबंध है। लेकिन जहाँ सीधे अभिधा द्वारा भाव-व्यंजना होता है, वहाँ काव्य भाषा के अंतर्गत निश्चित रूप से मिथक-भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है।

1.5 पुराण, इतिहास और मिथक में अंत:संबंध

आज के समय में पुराण साहित्य को विश्व साहित्य एवम् भारतीय जीवन की प्रमुख निधि के रूप में देखा जाता है। पुराण में मनुष्य के उत्कर्ष एवं अपकर्ष की अनेक कहानियां मिलती हैं। सभी अठारह पुराणों में अलग-अलग देवी-देवताओं को केन्द्र में रखकर धर्म और अधर्म, कर्म और अकर्म, पाप और पुण्य की गाथाएं कही गई है। आधुनिक सभ्यता ने व्यक्ति के व्यक्तित्व का अवमूल्यन किया है परंतु पुराण आज भी मनुष्य के लिए एक निश्चित मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

प्राय: यह देखा जाता है कि एक वर्ग पुराण साहित्य को केवल धार्मिक कहकर छोड़ देना चाहता है परंतु वह यह भूल जाता है कि भारतीय संस्कृति का मूल आधार यही पुराण है, किसी भी सभ्यता को अपनी परंपरा का अवश्य ही ज्ञान होना चाहिए। पुराण-साहित्य में अवतारवाद की प्रतिष्ठा है। निराकार की सत्ता को मानते हुए सगुण साकार की उपासना का प्रतिपादन इन ग्रंथों का मूल विषय है। सभी पुराणों का एक ही निष्कर्ष निकलता है कि आखिर मनुष्य और इस सृष्टि का आधार-सौंदर्य तथा इसकी मानवीय अर्थवत्ता में कहीं-न-कहीं सद्गुणों की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। आधुनिक जीवन में संघर्ष की अनेक भावभूमियों पर आने के बाद भी विशिष्ट मानव मूल्य अपनी अर्थवत्ता नहीं खो सकते। त्याग, प्रेम, भक्ति, सेवा सहनशीलता आदि ऐसे मानव गुण हैं, जिनके अभाव में किसी भी बेहतर समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। इसीलिए भिन्न-भिन्न पुराणों में देवताओं के विभिन्न स्वरूपों को लेकर मूल्य के स्तर पर एक विराट आयोजन मिलता है। एक बात और आश्चर्यजनक रूप से पुराणों में मिलती है। वह यह कि सत्कर्म की प्रतिष्ठा की प्रक्रिया में अपकर्म और दुष्कर्म का व्यापक चित्रण करने में पुराणकार कभी पीछे नहीं हटा और उसने देवताओं की कुप्रवृत्तियों को भी व्यापक रूप में चित्रित किया है लेकिन उसका मूल उद्देश्य सद्भावना का विकास और सत्य की प्रतिष्ठा ही है। पुराणों का उद्देश्य वेदोक्त ज्ञान तथा आध्यात्म के गूढ़ रहस्यों की व्याख्या माना गया है इसलिए वैदिक साहित्य में विभिन्न देवताओं, ऋषियों और राजाओं संबंधी जो मिथक बीज अथवा सूत्र रूप में यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे पुराणों में उनके चारों ओर विस्तृत मिथकीय कथाओं का ताना-बाना बुन दिया गया। डा० नगेन्द्र लिखते हैं- ''पुराण वस्तुत: मिथक का ही पर्याय है यही नहीं मायथोलॉजी के लिए संस्कृत का परिनिष्ठित शब्द 'पुराण विद्या' ही है।''[1]

मनुष्य आदिम काल से ही, जब इतिहास लेखन प्रारम्भ नहीं हुआ था, आख्यानों, मिथकों और गाथाओं के माध्यम से अपनी अतीत की कथा स्मृति को यथासंभव सुरक्षित रखता रहा है। इतिहास, पुराण और कथा साहित्य में मिथकीय प्रयोग इसके प्रमाण हैं। आज भी जब इतिहास वैज्ञानिक विधि से

[1] मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-265

लिखा जाने लगा, वह गाथाओं, मिथकों से पूर्णत: मुक्त नहीं हो पाया है। सभी ऐतिहासिक रचनाएँ मिथकों और आख्यानों से भरी हुई हैं।

सभ्यता के प्रारम्भ से ही जटिल विकास प्रक्रिया में इन आख्यानों, मिथकों, पुराणों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मिथक आदिम इतिहास की पुराकथाएँ हैं। इतिहास और मिथक को लेकर जो एक प्रश्न हमारे सम्मुख खड़ा होता है वह यह कि मिथकीय सीमा कहाँ खत्म होती है और इतिहास कहाँ से प्रारम्भ होता है या मिथक कब इतिहास बन जाता है? अपने एक लेख में विनोद तिवारी लिखते हैं- "यदि रूसी विचारक बर्दिएफ, जिसने इतिहास को मिथक की संज्ञा दी थी, को भारतीय संदर्भ में लागू किया जाये तो भारत में प्राचीन काल से ही इतिहास उपलब्ध होने लगेंगे। इतालवी दार्शनिक क्रोचे कहता है कि जहाँ आख्यान नहीं है वहाँ इतिहास नहीं है। यह सही भी है क्योंकि कोई भी साहित्यिक कृति एक आख्यान के रूप में इतिहास के साथ अपना रिश्ता उस चीज के लिए नहीं बनाती जो खुद ही गल्प होती है बल्कि उस चीज के लिए बनाती है जिसे एतिहासिक रूप से सार्थक कह सकें।"[1]

अत: कहा जा सकता है कि आख्यान का इतिहास लेखन में उपयोग वस्तुत: इतिहास का पुनर्सृजन है। यही कारण है कि इतिहास, पुराण और मिथक के अंत:सम्बन्धों के बीच की विभाजन रेखा स्पष्ट नहीं है।

1.6 मिथक उपन्यास और काशीनाथ सिंह

उपन्यास आधुनिक परिस्थितियों से उपजी हुई साहित्य की नई विधा है। इसका स्वरूप प्राचीन साहित्य की कथा व आख्यायिका से भिन्न है। उपन्यास का संबंध इसी भौतिक जीवन की समस्याओं से है। जबकि कथा, आख्यायिका अपने परिवृत में अलौकिक घटनाओं की कहानियां कहती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'साहित्य सहचर' में लिखते हैं- "उपन्यास और कहानियाँ हमारे साहित्य

[1] उपन्यास, कला और सिद्धान्त, सं.- विनोद तिवारी, पृष्ठ-276

में नयी चीज हैं। पुराने साहित्य में कथा, आख्यायिका आदि के रूप में इस जाति का साहित्य मिलता है पर उनमें और आधुनिक कथाओं- उपन्यास और कहानियों में मौलिक भेद है।"[1]

हिंदी उपन्यासों में प्रारंभिक चरण से ही हमें मिथकों का प्रयोग दिखायी पड़ता है किंतु पूर्व प्रेमचंद युग में उपन्यास मनोरंजन का साधन होने के कारण तिलिस्मी एवं जासूसी उपन्यास अधिकता में मिलते हैं। जिसे हम 'प्रेमचंद युग' कहते हैं वह दौर राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना से चलित दौर था जिसके कारण हमें मिथकीय उपन्यास गौण रूप में, जबकि मानव जीवन और परिवेश के यथार्थ का उद्घाटन करने वाले सामाजिक उपन्यास प्रधानता से दिखायी देते हैं।

मिथक अपने कलेवर में जीवन की सामान्य परिस्थितियों से उस तरह से जुड़ता हुआ दिखाई नहीं देता है जिस तरह से उपन्यास। चूंकि उपन्यास का जन्म ही आधुनिक जीवन की ठोस जमीन से हुआ है। इसलिए हमें उपन्यासों में मिथक का प्रयोग उस अधिकता से दिखाई नहीं देता है। जिस अधिकता से मिथकों का प्रयोग कविता और नाटकों में मिलता है।

प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यासकारों द्वारा समकालीन परिस्थितियों के यथार्थ चित्रण हेतु मिथकों में निहित आश्चर्यजनक अर्थ क्षमता का अन्वेषण करके नवीन संदर्भों में उपन्यासों में चित्रित किया गया है। इन उपन्यासों में चतुरसेन शास्त्री कृत 'वयं रक्षाम:' रांगेय राघव द्वारा रचित 'देवकी का बेटा' एवं 'प्रतिदान' एवं वृन्दावन लाल वर्मा का 'भुवन विक्रम' तथा यशपाल कृत 'अप्सरा का श्राप' प्रमुख है। 1970 के बाद सृजित उपन्यासों में मिथकों में निहित नवीन अर्थ संभावनाओं का संधान कर समकालीन परिस्थितियों के यथार्थ को बौद्धिक धरातल पर उकेरने का प्रयास किया गया। इस दृष्टि से लक्ष्मीकांत वर्मा का 'टेराकोटा', अमृतलाल नागर का 'एकदानैमिषारण्य', हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'अनाम दास का पोथा' तथा नरेंद्र कोहली कृत अभ्युदय', 'अभिज्ञान', 'महासमर' सर्वाधिक उल्लेखनीय है।

[1] साहित्य सहचर, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-63

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मिथकीय उपन्यासों की सृष्टि कर परवर्ती उपन्यासकारों के लिए एक नयी जमीन तैयार की। मिथकीय उपन्यासों में हजारी प्रसाद द्विवेदी के योगदान को रेखांकित करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं- "द्विवेदी जी हिंदी के अकेले मिथक उपन्यासकार हैं मिथक उनका रेहटारिक है, लालित्य है, संरचना का एक पैटर्न है। वे मिथकों के माध्यम से अतीत में पीछे हटकर अत्यंत वेगपूर्वक जड़ता पर आक्रमण करते हुए भविष्य का पुनर्निर्माण करते हैं।"[1]

हजारी प्रसाद द्विवेदी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए शिवप्रसाद सिंह का 'वैश्वानर' भगवान सिंह लिखित 'अपने अपने राम', रामनाथ त्रिपाठी कृत 'रामगाथा' , रघुवीर शरण मित्र कृत ' सदा सदा के प्रश्न ' आदि उपन्यासों में भी मिथकों द्वारा समकालीन परिवेश के यथार्थ का सशक्त चित्रण किया गया है। अतः मिथकों की आश्चर्यजनक अर्थ क्षमता पर आधारित मिथकीय प्रयोग निश्चिय ही हिंदी साहित्य की महान उपलब्धि है। मिथकीय उपन्यासों की इस परंपरा में काशीनाथ सिंह एक महत्वपूर्ण रचनाकार के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। काशीनाथ सिंह का 'उपसंहार' न केवल उनकी बनी बनायी छवि को तोड़ता है बल्कि मिथकीय चेतना को सामान्य मनुष्य के रूप में स्थापित कर एक नया आयाम प्रदान करता है।

अवधेश प्रधान कहते हैं- "वे कभी ऐतिहासिक उपन्यास लिखेंगें- यह बात सोची भी नहीं जा सकती थी- पौराणिक कथाओं पर आधारित उपन्यास तो दूर की बात है। कभी-कभी हरिश्चंद्र पर नाटक लिखने की बात कहते थे लेकिन उसमें भी पुरानी कथा को तोड़-फाड़कर आज के कफन- खसौट चेहरे को उजागर करना चाहते थे। जब ऐसी कोई चीज नहीं आयी तो हमने मान लिया की उनके भीतर का 'ऐंग्री यंग मैन' उधर जाने से रोक रहा है। वे ठहरे नित नयेपन के आशिक, पुराणों की दुनिया में क्यों जाने लगे। लेकिन जब 'उपसंहार' आया तो देखकर खुशी हुई और अचरज भी कि अस्सी की उम्र में वे

[1] आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह, पृष्ठ-342

द्वारका की यात्रा पर निकले तो हैं पर अपना नयेपन का खोजी मन और अपनी आधुनिक दृष्टि छोड़कर नहीं बल्कि साथ लेकर।"[1]

कविता और नाटकों में मिथक के प्रयोग को लेकर कुछ सहूलियत रहती है लेकिन उपन्यास में पौराणिक आख्यान और चरित्र को लेकर लिखना जोखिम के बराबर होता है। काशीनाथ सिंह ने जोखिम लिया और इस जोखिम से जूझते हुये कुछ नया रचते हुये पहले के ढर्रे से अलग एक नए रूप में मिथक उपन्यास की रचना की।

उपसंहार उपन्यास की पृष्ठभूमि में महाभारत का युद्ध है और मुख्य कथा भूमि में यदुकुल का संहार है। कुरुक्षेत्र के महाभारत से यदुकुल संहार तक कि कथा इस उपन्यास में है। द्वारका में जो कुछ हुआ वह कुरुक्षेत्र का ही विस्तार है। इसमें युद्ध के इतने हिंसक, बर्बर और वीभत्स चित्रों से गुजरना पड़ता है कि युद्धवीरता के तमाम प्रेरक और प्रभावशाली, उदात्त, नैतिक और तेजस्वी भावचित्र हवा हो जाते हैं और मन में देशभक्ति के थोथे नारों के बजाय मानवतावाद के उज्ज्वल आदर्श अधिक यथार्थ और जरूरी मालूम होने लगते हैं।

"कृष्ण यदि ईश्वर या वासुदेव थे तो महाभारत में, पुराणों में, धर्मग्रंथों में या भक्तिमार्गी उपन्यासों में, लेकिन कुरुक्षेत्र में महाभारत के 36 वर्षों तक द्वारकाधीश मानुषी के रूप में कैसे रहे, यह किसी ने देखने की जहमत नहीं उठाई, मानव के रूप में अपने किए कराये की स्मृतियों के साथ कितनी मानसिक और आध्यात्मिक यंत्रणायें झेली- यह भी नहीं देखा, उन्होनें ने द्वारका बसाई थी, उसे अमरावती की गरिमा दी थी, यादव कुलों का गणराज्य स्थापित किया था, लेकिन यादवों का विनाश क्यों हुआ? द्वारका का ध्वंस क्यों हुआ? कृष्ण क्यों सामान्य मौत मरे?और उन्हें मारने वाला निषाद जरा कौन था?

[1] उपसंहार : द्वारकाधीश का अंतिम पर्व, सोच विचार पत्रिका, पृष्ठ-44

यह सब जानने और समझने के क्रम में अपने मौजूदा भारतीय गणतंत्र की विडंबनाओं पर भी ध्यान गया, यहीं से जन्म हुआ इस उपसंहार उपन्यास।"[1]

मिथकीय कथा का स्वरूप द्वंद्वात्मक होता है। उसमें विरूद्धों के बीच संघर्ष है। मिथकीय कल्पना जीवन की भीषणता के चित्र के साथ आशा से भरी होती है। 'उपसंहार' अपने नायक की द्वंद्वात्मक मन:स्थितियों का चित्रण कर चरम सफलता से उपजे जीवन की निरर्थकता को दिखाती है।

1.7 काशीनाथ सिंह का परिचय

हिंदी कथा साहित्य में काशीनाथ सिंह का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। काशीनाथ सिंह उन गिने-चुने महत्वपूर्ण कथाकारों में से हैं जिन्होंने साहित्य जगत में अपने आप को बचाए रखने के लिए काफी संघर्ष किया। काशीनाथ सिंह द्वारा रचित साहित्य को जानने, समझने, परखने और मूल्यांकन हेतु सर्वप्रथम उनके व्यक्तित्व को जानना महत्वपूर्ण होगा।

काशीनाथ सिंह का जन्म 1 जनवरी 1937 को बनारस के जीयनपुर गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम नागर सिंह और माता का नाम बागेश्वरी था। उनके पिता जीयनपुर गांव के पहले मिडिल पास व्यक्ति थे। नागर सिंह प्राइमरी स्कूल के मास्टर थे। पिता के विषय में काशीनाथ सिंह कहते हैं- "मास्टर तो दूसरे गांव में भी थी प्राइमरी की ही नहीं मिडिल स्कूल तक पर लेकिन इनकी कुछ अपनी खासियत थी। यह कभी गांव के पचडों-झगड़ों में नहीं पड़े, अपने घरानों या पाटीदारों के हो या छोटी-बड़ी जातियों के। अपने काम से काम। बच्चे चाहे जिस जाति के हो उसे डांट डपट के स्कूल भिजवाते थे। बेहद नियमित और अनुशासित। कभी नहीं पाया कि स्कूल खुला हो और वे घर का काम निपटाने में लगे हों।"[2]

---

[1] उपसंहार : मनुष्य होने की त्रासदी, सोच विचार पत्रिका, पृष्ठ-81

[2] घर का जोगी जोगड़ा, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ-19

लेखक के उपरोक्त कथन से ज्ञात होता है कि उनके पिता स्वाभिमानी और खुद्दार किस्म के व्यक्ति थे। यही चारित्रिक दृढ़ता लेखक को अपने पिता से विरासत में प्राप्त हुई। इसी चारित्रिक दृढ़ता ने उन्हें जीवन में कभी समझौता नहीं करने दिया। वंदना चौबे से बातचीत करते हुए अपने पिता के विषय में काशीनाथ सिंह जी कहते हैं- "पिताजी अनुशासित व्यक्तित्व के स्वाभिमानी आदमी थे। अपने आगे न तो किसी को गिनते थे, न कुछ समझते थे। तभी बोलते थे जब कोई पूछता था। हमेशा चुप, हुक्का पीते थे। अपने भाइयों से भी बोलते नहीं सुना। नाच गाने में कोई रुचि नहीं। प्रतिदिन हाथ-पैर धोकर संध्या वंदन करते थे। मंदिरों में कोई दिलचस्पी नहीं। कभी हँस दे तो बड़ी बात समझिए। उन्होंने अपने भीतर ही कोई दुनिया बसा ली थी, उसी में रमे रहते थे। मां के देहांत के बाद उन्होंने हुक्का छोड़ दिया।"[1]

काशीनाथ सिंह के पिता नागर सिंह के अंदर एक ऐसी दुनिया थी, जिसमें वह जीवन भर जीते रहे और और उसके अंदर किसी को प्रवेश नहीं करने दिया। अपने अंदर की भावनाओं को दूसरे को व्यक्त नहीं करते थे। अपने स्वाभिमान के साथ इस दुनिया से विदा हुए। पिता के स्वभाव के बिल्कुल उलट स्वभाव काशीनाथ सिंह की माता का था। मां के संबंध में काशीनाथ सिंह कहते हैं –"मां पिताजी से एकदम उलट थी- स्वभाव में भी और आदतों में भी। नाम बागेश्वरी मगर अनपढ़। किसी की पढ़ाई का आतंक उन पर कभी नहीं देखा गया। बेटों को पढ़ाने के लिए गहना- गुड़िया,बर्तन-भाड़ा सब कुछ बेचने को तैयार।.. हमेशा हंसी-खुशी, उल्लास और उत्साह से भरी हुई| कोई ऐसा समय नहीं, कोई ऐसा मुहूर्त नहीं जिसके लिए उसके पास गीत न हों। इतने की रात बीत जाए और वह चुके नहीं। कहानियां इतनी कि हर शाम घराने के सारे बच्चे जुट जाएं।"[2] काशीनाथ सिंह की कहानियों पर उनकी मां की कहानी कहने के अंदाज़ की एवं गँवईपन की छाप देखी जा सकती है। स्वयं कथाकार बनने के संदर्भ में

---

[1] वंदना चौबे से बातचीत 'सड़क बाजार से लड़कपन में जो रिश्ता बना वह आज भी जारी है', सोच विचार पत्रिका, पृष्ठ-101

[2] काशीनाथ सिंह: आत्मतर्पण, हंस पत्रिका, पृष्ठ-239

काशीनाथ सिंह कहते हैं- "कहानी कहने का ढंग, कहानी कहने का शिल्प यह उन्हीं नाई-कहारों से और मां से मैंने सीखा।"[1]

माता बागेश्वरी देवी में एक प्रकार की सादगी, भोलापन और गँवईपन था| यही सादगी गँवईपन काशीनाथ सिंह में भी साफ झलकता है। उन्होंने अपने अंतिम दिन काशीनाथ सिंह के साथ 'लोलार्क कुंड' पर बिताए और वहीं जून 1972 में उनका देहांत हो गया।

काशीनाथ सिंह तीन भाइयों में सबसे छोटे थे। बड़े भाई हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह किसी परिचय की मोहताज नहीं। मंझले भाई का नाम रामजी सिंह है। काशीनाथ सिंह का बचपन साधारण बच्चों के बचपन की तरह ही बीता। वे अपने बचपन के संबंध में कहते हैं- "बचपन गांव में बीता। पढ़ाई लिखाई में मन नहीं लगता था। पाठशाला छोड़कर प्रायः भैंस लेकर सिवान में निकल जाता था। ज्वार बाजरा का खेत आगोरता था।"[2] वहीं काशीनाथ सिंह के बचपन के बारे में उनके पुत्र सिद्धार्थ सिंह बताते हैं कि- "इनका बचपन ज्वार बाजरा का खेत अगोरते, भैंस चराते, मछलियां मारते, महुआ बीनते, करेव और चने मटर का साग खोटते, मोट-पुर दौँरी करते, गुल्ली डंडा, डोला पाती और कबड्डी खेलते, अखाड़े में रियाज करते और कुश्ती के दांव पेंच सीखते, गर्मी पर बगीचे में टिकोरों पर निशाना साधते, आम बटोरते,फगुआ गाते और भाँड़ों के नाच देखते गुजरा।"[3]

काशीनाथ सिंह की प्रारंभिक पढ़ाई उनके गांव जीयनपुर में हुई। गांव के नजदीक अमर शहीद विद्या मंदिर से उन्होंने हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। 1953 में बनारस आ गए और काशी हिंदू विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की। सन 1958 में प्रथम श्रेणी से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में इनका शोध पंजीयन हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के काशी हिंदू विश्वविद्यालय से चले जाने के बाद काशीनाथ सिंह का शोध प्रबंध कार्य हेतु पुनः पंजीकरण

---

[1] वंदना चौबे से बातचीत, संबोधन पत्रिका, पृष्ठ-101

[2] वंदना चौबे से बातचीत, संबोधन पत्रिका, पृष्ठ-101

[3] जीवन परिचय बकौल काशीनाथ सिंह, सिद्धार्थ सिंह, पृष्ठ-239

पंडित कमलापति त्रिपाठी के निर्देशन में हुआ। 'हिंदी में संयुक्त क्रियाएं' विषय पर उन्होंने शोध प्रबंध लिखा। इसी दौरान वे अगस्त 1962 में ऐतिहासिक व्याकरण कार्यालय में ₹200 प्रतिमाह पर शोध सहायक पद पर कार्य किया। तत्पश्चात काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में पहले अस्थाई रूप से और 1965 में स्थाई पद पर नियुक्त हुए। हिंदी विभाग में अध्यापन कराते समय विश्वविद्यालय की 'परिवेश' पत्रिका का सन 1978 से 1976 तक संपादन कार्य किया। काशीनाथ सिंह सन् 1965 से 1996 तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक से लेकर प्रोफेसर रूप में कार्यरत रहे। इसी विश्वविद्यालय में सन् 1991 से 1996 तक हिंदी विभाग में भी आचार्य एवं अध्यक्ष पद पर भी रहे। 31 साल के विश्वविद्यालय अध्यापन काल में 35 छात्रों के शोध निर्देशक रहे। दिसंबर 1996 में सेवामुक्त होने के पश्चात लेखन कार्य में अधिक सक्रिय हुए।

1.8 काशीनाथ सिंह का व्यक्तित्व

साहित्यकार का व्यक्तित्व ही उसके चरित्र- व्यवहार एवं कृतित्व का परिचायक होता है। काशीनाथ सिंह जी का व्यक्तित्व एक शांत प्रकृत, निर्झर की तरह कल-कल बहता हुआ सा है। काशीनाथ जी जब मोहक ढंग से मुस्कुराते हैं तब इसमें उनकी आंखें बराबर के शरीक होती हैं। एक साक्षात्कार में 'बनास' पत्रिका के संपादक पल्लव ने जब काशीनाथ सिंह जी को उनकी बला की मुस्कुराहट का राज पूछा तो उनका जवाब था- "मुस्कुराहट का राज है काशीनाथ जी की मूर्खता और बौडमपना ज्ञानी भी नहीं भाव पाता।"[1]

काशीनाथ सिंह के व्यक्तित्व में सहजता एवं सरलता है। उनके सहज और सरल व्यक्तित्व के बारे में श्याम बिहारी श्यामल लिखते हैं- "काशी की तरह ही काशीनाथ भी विलोम और विपर्ययों के विशिष्ट समन्वय हैं। सरल किंतु एकदम विरल उसी तरह सहज किंतु इतने ज्यादा कि सामने वाला

[1] बनास जन, सं. पल्लव, पृष्ठ-3

असहज होने से शायद ही बच सके... पल भर में किसी अपरिचित पर भी छा जाने यह व्यक्ति के बीच के किसी भी अंतर या दूरी को एक मुस्कान भर या अदने वाक्य से दूर फेंक देने वाले।"[1]

काशीनाथ सिंह ने जीवन को हमेशा उसूलों से जिया। उन्होंने कई संघर्ष किए परंतु कभी समझौता नहीं किया। काशीनाथ सिंह के विषय में अवधेश प्रीत कहते हैं- "वह कोमलकांत पदावली सा सौम्य तो है, लेकिन यह उनकी बाहरी बनावट है। भीतर-भीतर से कई मोर्चों पर लोहा लेते एक सशक्त जान रचनाकार हैं।"[2] काशीनाथ सिंह अपनी लेखनी के माध्यम से यह मोर्चा लेते हैं, जहाँ वह किसी को नहीं बख्शते।

एक लेखक के रूप में प्रख्यात होने के बावजूद काशीनाथ सिंह अपने जीवन में एक सहज सरल व्यक्ति हैं। व्यक्ति के रूप में यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि वे जन सामान्य के बीच में बैठते हैं। उनके मित्रों में सभी वर्ग के लोग सम्मिलित हैं। काशीनाथ सिंह ने व्यक्ति को परख कर यथार्थ को लिखने की कोशिश की है। यही वजह है कि उनका साहित्य पाठकों को अपना महसूस होता है। इस प्रकार उनके समग्र साहित्य के माध्यम से हम उनके व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से स्पष्टतः देख सकते हैं।

1.9 काशीनाथ सिंह का रचना संसार

काशीनाथ सिंह का आविर्भाव हिंदी साहित्य में सन् 1960 में हुआ। उनकी पहली रचना एक आलेख 'हिंदी कहानी के साठ वर्ष' थी, जो 'बासंती पत्रिका' के नव वर्ष विशेषांक में छपा था। यह पत्रिका साधु बेला आश्रम वाराणसी से निकलती थी। यहीं से लेखन कार्य आरंभ करने के बाद उनकी पहली कहानी 'सुख' सन 1964 में छपी। सन् 1969 ई. में काशीनाथ सिंह का 'घोआस' नाटक 'युयुत्सा' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ जो उनका एकमात्र नाटक है। काशीनाथ सिंह का रचना संसार बहुत वृहत नहीं है परंतु जो भी उन्होंने लिखा है वह हिंदी कथा साहित्य की अमूल्य धरोहर है। काशीनाथ सिंह

[1] काशी में हम : हमने काशीनाथ, पृष्ठ-32

[2] काशी के काशी, कासी का कहन- अवधेश प्रीत, सोच-विचार पत्रिका, पृष्ठ-158

स्वयं इस संदर्भ में लिखते हैं- "मेरी शुरुआत यहीं से हुई कि महज लिखने के लिए मत लिखो। फालतू, बेमतलब कतई नहीं।"[1]

काशीनाथ सिंह का संपूर्ण साहित्य इस प्रकार है :-

कहानियां

- बिस्तरों पर (1968) : अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
- सुबह का डर (1975) : रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
- आदमीनामा (1978) : प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
- नई तारीख (1979) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- कला की फटेहाल कहानियां (1980) : प्रतिमान प्रकाशन, इलाहाबाद
- प्रतिनिधि कहानियां (पेपरबैक 1984) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- सदी का सबसे बड़ा आदमी (1986) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- दस प्रतिनिधि कहानियां (1994) : किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
- कहानी उपखान (समग्र कहानियां 2003) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- संकलित कहानियां (2008) : नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
- कविता की नई तारीख (2010) : हार्पर कॉलिन्स हिंदी, नई दिल्ली
- मेरी प्रिय कहानियां (2011) : राजपाल एंड सांस, दिल्ली
- खरोंच (2014) : साहित्य भंडार, चाहचन्द, इलाहाबाद

[1] कहनी उपखान : काशीनाथ सिंह, पृष्ठ-99

- पायल पुरोहित तथा अन्य कहानियां (2016)

<u>उपन्यास</u>

- अपना मोर्चा (1972) : रचना प्रकाशन इलाहाबाद, पेपरबैक (1985)
- काशी का अस्सी (2002) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- रेहन पर रग्घू (2008) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- महुआ चरित (2012) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- उपसंहार (2014) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

<u>संस्मरण</u>

- याद हो कि न याद हो (1992) : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- आछे दिन पाछे गए (2004) : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- लंका बांके चारि दुआरा (2006) : हंस, जनवरी 2008, नई दिल्ली
- घर का जोगी जोगड़ा (2007) : राजकमल प्रकाशन
- नेशनल हाईवे पर ढाबा (2009) : बनास -2, 2009, उदयपुर
- 'काशीनामा' की कुंडली (2009) : बनास -2, 2009, जयपुर
- यह जो बनारस है (2009) : बनास-2, 2009, उदयपुर
- नामवर के झक्कड़ बाबा (2012) : शुक्रवार- साहित्य वार्षिकी
- इवान इलिच (2009) : संदर्भ-2009 लेखक की छेड़छाड़ -2013
- धुआं धुआं यादें (2006) ; परिकथा 2006

- अथ प्रह्लाद कथा (2012-2013) : लफ़्ज़- अगस्त,12 जनवरी 13

नाटक

- घोआस (1982) : प्रारूप प्रकाशन इलाहाबाद

शोध

- हिंदी में संयुक्त क्रियाएं (1976) : रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
- आलोचना भी रचना है (1996) : किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
- लेखक की छेड़छाड़ (2013) : किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली

संपादन

- परिवेश (अनियत कालीन पत्रिका- 1971-1977) : काशी हिंदू विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित
- काशी के नाम (वरिष्ठ समीक्षक नामवर सिंह के पत्रों का संचयन/संपादन-2007), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

साक्षात्कार संकलन

- गपोड़ी से गपशप (2013), पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- बातें है बातों का क्या (2022), पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

सम्मान

- 2001, शरद जोशी सम्मान, संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश

- 2003, साहित्य भूषण पुरस्कार, उत्तर प्रदेश
- 2004, कथा सम्मान, दिल्ली
- 2010, राजभाषा पुरस्कार, बिहार
- 2011, साहित्य अकादमी पुरस्कार, दिल्ली (रेहन पर रग्घू)
- 2012, सृजन सम्मान, आसनसोल
- 2013, रचना समग्र पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता
- 2013, मीरा स्मृति सम्मान, मीरा फाउण्डेशन एवं साहित्य भण्डार, इलाहाबाद
- 2014, भारत भारती सम्मान (उ.प्र. हिन्दी संस्थान)
- 2016-17, कैफी आज़मी अकादमी सम्मान

इस प्रकार मिथक और साहित्य के अंत:संबंध को समझने के साथ काशीनाथ सिंह के व्यक्तित्व और जीवन परिचय की जानकारी इस अध्याय से प्राप्त हुई। अगले अध्याय में मिथक उपन्यास की भाषा और विवेच्य उपन्यास 'उपसंहार' का पौराणिक, मिथक, संस्कृति और शैली के स्तर पर उसका विशेषण करेंगे।

अध्याय 2

मिथक उपन्यास और भाषिक विश्लेषण

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसे हमेशा अपने भावों और विचारों को व्यक्त करना पड़ता है जिसके लिए 'भाषा' ही सर्वोत्तम माध्यम है। भाषा, व्यक्ति के अपने अनुभवों, विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम है। सभी समाजों में भाव और विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा का सहारा लिया जाता है। आदिम समाज में जब भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं थी तो वह अपने भाव और विचारों को व्यक्त करने के लिए सांकेतिक चिन्हों का प्रयोग करते थे। भाषा मानव समाज की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है, जिसके माध्यम से वह अपने आप को अभिव्यक्त करने में सफल हो सका है। मानव समाज की उन्नति में भाषा का भी बहुत बड़ा योगदान है। कामताप्रसाद गुरु भाषा पर विचार करते हुए लिखते हैं- "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है।"[1]

भाषा पर विचार करते हुए गरिमा श्रीवास्तव ने भोलानाथ तिवारी के भाषा संबंधी विचारों का उल्लेख किया है भोलानाथ तिवारी कहते हैं- "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[2] देवेंद्रनाथ शर्मा अपनी किताब 'भाषा विज्ञान' में लिखते हैं- "भाषा उच्चारणों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[3]

---

[1] व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृष्ठ-17

[2] भाषा और भाषा विज्ञान, गरिमा श्रीवास्तव, पृष्ठ-07

[3] भाषा विज्ञान, देवेंद्रनाथ शर्मा पृष्ठ-04

2.1 उपन्यास की भाषा

रामस्वरूप चतुर्वेदी उपन्यास की भाषा पर विचार करते हुए कहते हैं- ‘‘उपन्यास में भाषा प्रयोग की दोहरी समस्या है एक तो गद्य की सामान्य प्रकृति के हिसाब से उसे वर्णन करना और दूसरा उससे अधिक मुश्किल काम है सूक्ष्म और जटिल अनुभव को संप्रेषित करना। भाषा के इस दोहरे धर्म को निभाने में उपन्यासकार का मुख्य कृतिकर्म निहित है।’’[1]

रामस्वरूप चतुर्वेदी उपन्यास की भाषा की समस्या पर बात करते हुए कहते हैं उपन्यास में भाषिक संगठन की दोहरी प्रक्रिया को न संभाल पाना सबसे बड़ी कठिनाई है। वह बताते हैं कि उपन्यासकार वर्णन की भाषा में इस प्रकार डूब जाता है कि वह सृजनात्मक भाषा को विकसित करने का कार्य छोड़ देता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण झूठा सच उपन्यास है। जिसे पढ़ते समय महसूस ही नहीं होता कि उपन्यास पढ़ रहे हैं बल्कि ऐसा लगता है कि विभाजन के दिनों के पुराने समाचारपत्रों को पढ़ रहे हैं। रामस्वरुप चतुर्वेदी उपन्यास की भाषा पर विचार करते हुए आगे कहते हैं- ‘‘उपन्यास के वर्णन प्रधान ठोस गद्य में यथा आवश्यक हल्के-हल्के बिम्बों का प्रयोग होना चाहिए। साथ ही अर्थ की अनुगूँज उत्पन्न करने वाले शब्दों और मुहावरों का भी प्रयोग होना चाहिए।’’[2]

साहित्य में सृजनात्मकता को मापने का कोई पैमाना नहीं होता है किंतु माना जाता है कि उपन्यास की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो कविता के सघन सर्जनात्मक भाषा और गद्य के सामान्य वर्णन-प्रधान भाषा के बीच में हो अर्थात उपन्यास की भाषा वर्णन प्रधान होने के साथ-साथ सृजनात्मक भी होनी चाहिए। निर्मल वर्मा का ‘वे दिन’ उपन्यास इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। यथार्थ को यथासंभव समग्रत: अनुभव करने के लिए उपन्यास की भाषा में कविता की भाषा के संक्रमण का उपयोग कुछ यूरोपीय और अंग्रेजी रचनाकारों ने भी किया है। हिंदी में प्रेमचंद के बाद उपन्यास की भाषा को नए ढंग

[1] उपन्यास की भाषा, हिंदवी वेब

[2] उपन्यास की भाषा, हिंदवी वेब

से ढालने का काम जैनेंद्र ने किया। इस दृष्टि से 'त्यागपत्र' उपन्यास साहित्य की बेजोड़ और स्पृहणीय उपलब्धि है। यहां जैनेंद्र शब्दों से उतना काम नहीं करते जितना काम उसकी भंगिमा से करते हैं। जैनेंद्र के साथ ही इसी सूची में अज्ञेय का नाम भी शामिल है। उपन्यास की भाषा में वर्णन साध्य नहीं होना चाहिए बल्कि साधन होना चाहिए। क्योंकि अनुभव का संप्रेषण ही किसी रचना का मूल उद्देश्य होता है। उपन्यास की भाषा में वर्णन और संप्रेषण दोनों का समान रूप से महत्व है। रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिक उपन्यास के भाषा समस्या पर विचार करते हुए कहते हैं- "वर्णन की पारंपरिक स्थूल भाषा और नई कविता की अमूर्त और विरूपीकृत भाषा को एक रचना विधान में किस प्रकार संगठित किया जाए यही इसकी सबसे बड़ी समस्या है।"[1] अनुभव को अनुभव की समग्रता में संप्रेषित करने के लिए सीधी भाषा कभी पर्याप्त नहीं रही आज तो और भी नहीं। सामान्यत: उपन्यास की भाषा के लिए आवश्यक है की उसमें वर्णन के साथ-साथ सृजनात्मकता भी शामिल हो ताकि संप्रेषण प्रभावी बन सके।

काशीनाथ सिंह की भाषा के संदर्भ में आलोचकों की राय भिन्न भिन्न है। काशीनाथ सिंह के भाषिक पक्ष को लेकर सबसे अधिक चर्चा होती है। इसकी रचना प्रक्रिया के बारें में अखिलेश जी का विचार है- "काशीनाथ सिंह मूलतः किस्सागो हैं जो उनकी रचना-प्रक्रिया की बहुत बड़ी उपलब्धि है। क्योंकि यदि लेखक साहित्यिक सृजन की दुनिया में अपनी बात सूचना, समाचार और बयान के रूप में कहेगा तो वह एक साधारण लेखक होगा। सत्य को कला के माध्यम से व्यक्त करने के लिए किस्सागोई बहुत बड़ी प्रविधि होती है। काशीनाथ सिंह अपने लेखन में किस्सागोई के औजार से हमारे सामाजिक यथार्थ और समय के सत्य को विश्लेषित और स्थापित करते हैं । इसलिए मुझे लगता है कि काशीनाथ सिंह एक किस्सागो है और यह उनकी एक बड़ी उपलब्धि है।"[2]

[1] उपन्यास की भाषा, हिंदवी वेब

[2] काशी के काशी, सोच विचार पत्रिका, पृष्ठ-34

काशीनाथ सिंह के अनेक रचनाओं की कथा-भाषा में समाज में प्रयोग होने वाली भाषा के निकट की भाषा का इस्तेमाल हुआ है। जबकि कुछ रचनाओं में ऐसी भाषा मिलती है जो इनके हाथ से निकली हुई भाषा है। खास तौर ऐसी भाषा का प्रयोग ऐसी जगह मिलता है जहाँ ये प्रतीकात्मक ढांचे के अनुकूल भाषा बनाने की सायास कोशिश करने लगते हैं। इनकी रचनाओं में कहीं भी ऐसी भाषा हमें नहीं मिलती जिसके संप्रेषण में परेशानी हो। उनकी भाषा हमेशा सम्प्रेषण करने वाली भाषा बनी रहती है। जटिल से जटिल बात लिखने के लिये भी उन्होंने सहज और स्पष्ट अर्थ देने वाली अथवा संप्रेषित होने वाली भाषा लिखी है। भाषा पर लेखक की वैयक्तिक और सामाजिक परिवेश और उसके सौंदर्य बोध की छाप होती है। इसलिए रचना में प्रयोग होने वाली भाषा विशेष भाषा होती है।

काशीनाथ सिंह के भाषा के संदर्भ में चौथीराम यादव का विचार है- "उनकी भाषा इतनी बैलेंस होती है कि वे जो कुछ कहना चाहते हैं भाषा अपने आप कहती है। उनकी भाषा की शक्ति बहुत बड़ी है और कहन की विशेषता एक बड़ी विशेषता है। दो चीजें ऐसी है जो बहुत कम देखने को मिलती हैं, क़िस्सागोई और कथा भाषा । काशीनाथ सिंह के पास ये दोनों हैं जिससे वे भविष्य में जाने जाएंगे।"[1]

काशीनाथ सिंह मूलतः पूर्वांचल से आते हैं। पूर्वांचल के देशज जीवन, संस्कृति और लोक जीवन में उनकी बहुत गहरी पैठ है। जो उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की विशेषता है। वे अपनी जमीन से जुड़कर रचना करते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में देशज तत्व प्रमुखता से हावी रहता है। काशीनाथ सिंह समाज में होने वाले परिवर्तन में पिछड़ते नहीं हैं बल्कि आगे बढ़कर उस परिवर्तन की नब्ज़ पर अंगुली रखते हैं और सही से उसकी पड़ताल करते हैं।

[1] काशी के काशी, सोच विचार पत्रिका, पृष्ठ-32

आशीष त्रिपाठी काशीनाथ सिंह के भाषा के बारे में लिखते हैं- "काशीनाथ जी अपनी कहानी भले ही लिखते हैं, लेकिन वे भाषा का इस तरह से इस्तेमाल करते हैं जैसे कि उसे 'कह रहे हैं'। इसलिए इनकी कहानी लिखी हुई कम बोलती हुई ज्यादा मालूम लगती है।"[1]

प्रत्येक उपन्यासकार का अपना दृष्टिकोण होता है। वह अपने दृष्टिकोण से अपने देशकाल, परिवेश और संस्कारों के आधार पर वस्तु जगत का विवेचन, विश्लेषण करता है। काशीनाथ सिंह सातवें दशक में उभरने वाले महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यास यथार्थ की जमीन पर पूर्णरूप से व्यवस्थित हैं। वे प्रगतिशील विचारों से अनुप्राणित हैं। यही कारण है कि समाज और साहित्य संबंधी उनके दृष्टिकोण में विद्रोह का भाव दिखता है जिसका प्रभाव उनके औपन्यासिक संरचना पर पड़ता है।

हिंदी साहित्य में कृष्ण को काव्य का केंद्र बनाकर अनेक रचनाएँ हुईं। कृष्ण चरित्र का आख्यान अनेक कवियों और आलोचकों द्वारा अपने अपने अनुसार किया गया। हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर छायावादोत्तर तक कृष्ण की बाल लीलाओं पर अनेक काव्य लिखे गये हैं। आधुनिक काल में कृष्ण के राजनीतिक रूप को दिखा कर काव्य रचना हुई है। इस तरह हम कृष्ण के तीन रूप को काव्य में देखते हैं ,पहला योगी रूप, जिसका गीता के 'कृष्ण' में चरम परिणति दिखायी देती है। दूसरा- ललित मधुर गोपाल का रूप, संस्कृत साहित्य में जिसकी चरम परिणति श्री मद्भागवत पद्य और ब्रह्मवैवर्त पुराण में हुई है तथा तीसरा, वीर राजनयिक का रूप, जो महाभारत और पुराणों में युद्ध के संधि-विग्रह संबंधी प्रसंगों में हुआ है। ये रूप मनुष्य के ज्ञान, राग और कर्म के तीन प्रधान मानसिक वृत्तियों के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं।

आजादी के बाद कृष्ण के राजनीतिक रूप को लेकर अधिक काव्य लिखा गया जिसमें कृष्ण एक साधारण मनुष्य के रूप में हैं। वे दुःख-सुख से परे नहीं बल्कि भुक्तभोगी हैं। कृष्ण को मानवीय गुणों

[1] काशी के काशी, सोच विचार पत्रिका, पृष्ठ-37

से सम्पन्न मनुष्य के रूप में स्थापित करके अनेक लेखकों ने काव्य रचना की है। वरिष्ठ कथाकार काशीनाथ सिंह ने भी 'उपसंहार' की रचना की। जो आधुनिक मानवीय चरित्रों से परिपूर्ण है।

काशीनाथ सिंह जी 'उपसंहार' उपन्यास में महाभारत की उत्तर कथा का अपने दृष्टिकोण से विवेचन, विश्लेषण करते हैं। उन्होंने इस रचना में मिथकीय कथा में आधुनिकता के अनेक सूत्र ढूढ़ने में सफलता पायी है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं के शिल्प एवं वस्तु में रोचकता एवं विविधता के दर्शन होते हैं। इस संदर्भ में पुष्पपाल सिंह लिखते हैं- "यदि कथाकार ने इतिहास के किसी बड़ी घटना को केंद्र में रखा है तो उसके माध्यम से वह वर्तमान की उहापोह में रहता है। वह वर्तमान के प्रश्नों के लिए ही इतिहास और मिथक को निज दृष्टि से खंगालता है। प्रत्येक उपन्यासकार ने अपने देखे हुए यथार्थ को अपनी तरह से वाणी दी है। इसलिए इसमें इतना विस्मयकारी वैविध्य और रोचकता है।"[1]

काशीनाथ सिंह के उपन्यासों के संबंध नामवर सिंह लिखते हैं- "विषय वस्तु को बदलना आसान है। साहित्य और कला के क्षेत्र में फार्म तोड़ा जाता है। उपन्यास में नैरेशन, आख्यान के ढंग को बदलना बहुत बड़ी बात होती है।"[2] 'काशी का अस्सी' उपन्यास का एक प्रमुख आकर्षण केंद्र नयी भाषिक संरचना है, जो लोक भाषा, मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों के रूप में औपन्यासिक शिल्प को नया रूप देते हैं। इस उपन्यास की भाषा को लेकर कई आपत्तियां व्यक्त की गई हैं। किंतु इस उपन्यास में देशीपन एवं स्थानीयता का पुट मिलता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में भाषा का औदात्य रूप त्यागकर बहुत सहजता एवं खुलेपन के साथ 'भाषा बहता नीर' के रूप प्रयुक्त करने का प्रयास किया गया है। इस संदर्भ में पुष्पपाल सिंह की टिप्पणी सार्थक प्रतीत होती है। उनके अनुसार- "काशीनाथ सिंह और संजीव की उपन्यास भाषा से उदाहरण देकर इस बात को समझा जा सकता है । काशीनाथ सिंह बनारस की बोली-बानी, वहाँ के गाली-गलौज को अपनी भाषा मे अकुंठ भाव से अपनाते हैं। वे जिस अस्सी के वर्णन

[1] 21वीं शती के हिंदी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ-50

[2] पल-प्रतिपल पत्रिका, पृष्ठ-251

'काशी का अस्सी' में करते हैं गालियां वहाँ की राष्ट्रभाषा के आवश्यक अंग और श्रृंगार हैं। इसलिए उनके पात्र सजहभाव से उधर देते हैं"।[1]

उपसंहार उपन्यास की विषयवस्तु पौराणिक है किंतु भाषा सहज, सरल एवं आधुनिक जनमानस के अनुकूल है। उपन्यास में पौराणिक शब्दावलियों का भी प्रयोग हुआ है। उपन्यास की भाषा आधुनिक जनमानस के अनुकूल है। उपन्यास की रचना साधारण बोलचाल की भाषा में हुई है। उपन्यास लघु होते हुये भी इसमें गागर में सागर जैसा भाव है जिसमें पौराणिक कथा का सहारा लेकर आधुनिक समाज की विसंगतियों पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है।

काशीनाथ सिंह के भाषा के संदर्भ में अमरनाथ प्रजापति लिखते हैं- " भाषा एवं शैली की दृष्टि से यह उपन्यास नवीनतम प्रयोग है। गद्य एवं पद्य में लिखा गया यह उपन्यास अपने लघु कलेवर में अधिक से अधिक तर्कों, अर्थों एवं प्रश्नों को समेटे हुए है जिस पर विचार करना महत्वपूर्ण ही नहीं जरूरी भी है। इसमें महाभारत की कथा को बिल्कुल नये अर्थों में देखा गया है। साधारण से नित शब्दों के माध्यम से गर्भित अर्थ की व्यंजना इस उपन्यास की भाषा की व्यंजना है।"[2]

काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यासों में भाषा का प्रयोग अत्यंत सरल एवं कलात्मक रूप में मिलता है। सामाजिक परिवेश की बोलचाल की भाषा को उन्होंने अपने उपन्यासों में सहजता के साथ प्रस्तुत किया है। इस संदर्भ में सूरज पालीवाल का कथन है- "यह भाषा जो बोलती है जो सामने वाले सुदूर पाठक से संवाद करती-सी भाषा है और वह भाषा तो नदी की तरह उछल-कूद करती, किनारों से टकराती अपनी मस्ती में लेकिन एक लचक में बह रही है- उस भाषा के मास्टर हैं काशीनाथ सिंह।"[3]

---

[1] भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ-139

[2] लमही पत्रिका, पृष्ठ-106

[3] कहन पत्रिका,पृष्ठ-41

2.2 पौराणिक के स्तर पर

पौराणिक शब्द का इस्तेमाल माइथोलॉजी के लिए किया जाता है। पौराणिक शब्द 'पुराण' में इक प्रत्यय जोड़कर बनाया गया है। डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'भारतीय साहित्य कोश' में पुराण के संदर्भ में कहा गया है- "पुराण (रचनाकार 600 ई.पूर्व) किसी एक काल की रचना नहीं है पुराणों के रचयिता व्यास हैं। 'पुराण' शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है। पुराणों की संख्या अठारह हैं। पुराण भारतीय धर्म एवं समाज के इतिहास-ग्रंथ हैं। पुराणों के अंतर्गत सृष्टि के आरंभ से लेकर मानव के विकास तक का इतिक्रम भी उपलब्ध होता है।[1]

किसी भी देश या राष्ट्र, जाति की संस्कृति के मूल में उसके पुराण होते हैं। जितनी भी पुरानी संस्कृतियां और सभ्यताएं हैं, उनकी अपनी माइथोलॉजिकल मान्यताएं और विभावनाएँ हैं। उनमें कई तर्कातीत घटनाएं होती हैं, चमत्कार होते हैं। ऐसी बातें होती हैं जिनको हमारी सामान्य बुद्धि सहज रूप से स्वीकार नहीं कर सकती। महान जर्मन कवि गेटे से जब किसी ने इन महाकाव्यों की सभ्यता के संदर्भ में पूछा तो उनका प्रत्युत्तर था- "जब हमारे पूर्वज इस प्रकार की महान कल्पनाएं करने में सक्षम थे तो हमें इतना सक्षम तो होना चाहिए कि कम से कम हम मान्यताओं को स्वीकार करें।"[2]

भारतीय संस्कृति में 18 पुराणों की महत्ता है। इसका आधार मिथकीय कथाएं ही है। डॉ. नगेंद्र लिखते हैं- "पुराण वस्तुतः मिथक का ही पर्याय है। यही नहीं माइथोलॉजी के लिए संस्कृत का परिभाषित शब्द 'पुराण विद्या' ही है।"[3]

भारतीय संस्कृति में ये पौराणिक कथाएं रची-बसी हुई हैं। ये जनमानस के पटल पर एक लंबे काल से बनी हुई हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती रहती हैं। इस संदर्भ में के.सी. सिंधु

---

[1] भारतीय साहित्य कोश, डॉ. नगेन्द्र,पृष्ठ-725

[2] दृष्टव्य : लेख ,गुजरात समाचार, 15/9/2007

[3] भारतीय मिथक कोश, उषा विद्यावाचस्पति, पृष्ठ-620

का यह कथन दर्शनीय है- “भारतीय संस्कृति अपनी कालजयी चेतना के कारण सहस्त्रों वर्षों से किसी न किसी रूप में उपस्थित रही हैं।”[1]

पौराणिकता की जड़े बहुत गहरी हैं। हिन्दू अथवा भारतीय माइथोलॉजी का इतना अधिक विस्तार है कि इस पर विस्तृत चर्चा के लिए इत्मीनान चाहिए। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि इसे मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसका एक हिस्सा वेद, पुराण, महाकाव्यात्मक पात्रों, देवताओं और उनसे जुड़ी कहानियों का है, तो दूसरा हिस्सा लोकविश्वासों से उपजी हुई स्थानीय स्तर के देवताओं से जुड़ा हुआ है।

काशीनाथ सिंह का ‘उपसंहार’ उपन्यास उत्तर महाभारत की कृष्ण कथा है। महाभारत जिसके विषय में कहा जाता है कि संसार में जो कुछ है वह सब महाभारत में मौजूद है। जो महाभारत में नहीं है वह कहीं भी नहीं है। महाभारत के पश्चात श्रीकृष्ण को परमेश्वर, द्वारकाधीश इत्यादि सम्मानसूचक शब्दों से अभिहित किया जाने लगा। इन्हीं श्रीकृष्ण को महाभारत पश्चात भूला दिया गया। काशीनाथ सिंह अपने एक इंटरव्यू में कहते हैं- “कृष्ण यदि ईश्वर या वासुदेव थे तो महाभारत में, पुराणों में, धर्मग्रंथों में या भक्तिमार्गी और धर्मधुरीन उपन्यासों में, लेकिन कुरुक्षेत्र में महाभारत के बाद 36 वर्षों तक द्वारकाधीश मनुष्य के रूप में कैसे रहे? यह किसी ने देखने की जहमत नहीं उठाई। मनुष्य के रूप में अपने किये-कराये की स्मृतियों के साथ कितनी मानसिक और आध्यात्मिक यंत्रणाएं झेलीं यह भी नहीं देखा। उन्होंने द्वारका बसाई थी, उसे अमरावती की गरिमा दी थी, यादवकुलों का गणराज्य स्थापित किया था, लेकिन यादवों का विनाश क्यों हुआ? द्वारका का ध्वंस क्यों हुआ? कृष्ण क्यों सामान्य मौत मरे और उन्हें मारने वाला निषाद जरा कौन था?”[2]

इन्हीं तमाम प्रश्नों के जवाब काशीनाथ सिंह पौराणिक कथाओं में खोजते हैं।

---

[1] राम कथा कालजयी चेतना, पृष्ठ-10

[2] उपसंहार : मनुष्य होने की त्रासदी, सोच-विचार, पृष्ठ-81

'उपसंहार' की कथा के केंद्र में कृष्ण हैं वही कृष्ण जो भारतीय पौराणिक कथाओं में रास-लीला, नटखट, माखन चोर, लीलाधर के रूप में जन-जन के मन में वास करते हैं। उन्हीं कृष्ण की मृत्यु कैसे, किन परिस्थितियों में हुई? कृष्ण इतने असहाय अकेले कैसे, क्यों हुए? इन सब प्रश्नों के उत्तर लेखक ने पौराणिक कथाओं के माध्यम से खोजें हैं- "महाराजा मेहताब चंद्र बहादुर (1820-1879 ईस्वी) के समय में वर्तमान में महाभारत के कई तथा-प्रसंगों पर लकड़ी पर उत्कीर्णित चित्र तैयार हुए थे। उन्हीं चित्रों में से यह एक है। जिसमें जरा नामक बहेलिये को कृष्ण की तरफ तीर लक्षित करते हुए दर्शाया गया है।"[1] इसी चित्र को आधार बनाकर लेखक ने विवेच्य उपन्यास में कृष्ण की मृत्यु बहेलिये की गोद में दिखाते हैं। जो एक पौराणिक कथा के अनुसार श्रीकृष्ण की ही भाई था।

श्रीकृष्ण ने द्वारका को बसाया। द्वारका पूर्ण रूप से समृद्ध थी। ऐसी कोई चीज नहीं थी जो द्वारका में न हो परंतु इसका अंत इस प्रकार हुआ जैसे वह कभी थी ही नहीं। उस द्वारका का अंत कैसे हुआ? इसे भी पौराणिक कथा के माध्यम से काशीनाथ सिंह ने 'उपसंहार' में स्पष्ट किया है- "दुर्वासा कृष्ण पर कृपा करके 10-15 दिन रहे और जाने से पहले महल को खंडहर बना गए। कैसे सुनिए- पहले ही दिन महल के शीशे की सारी खिड़कियां तोड़ते रहें- कुछ हथौड़े से, कुछ ईट पत्थर से।

जितने दरवाजों को उखाड़ा जा सकता था, उखाड़ डालें।

संग्रहालय में रखी गोकुल, मथुरा, द्वारका की अनमोल वस्तुएं और धरोहरें उठा-उठाकर जंगल में जहाँ-तहां फेंक आएं।

वह अपने चिरकुट लिबास में या कभी नंगे बड़बड़ाते, रोते, हँसते, गुनगुनाते महल और महल के बाहर घुमते या नाचते रहते।

---

[1] उपन्यास के आवरण पृष्ठ पर

इसी घूमने-नाचने में उन्होंने दो बारहसिंगों की सींगें और खरगोश के कान उखाड़ डालें। संयोग से कोई हिरण उनके हाथ नहीं आया।

एक दिन लोगों ने उनके कमरे से धुआं उठता देखा। झांककर देखा तो कालीन, गद्दे, तकिए, पलंग सभी में आग लगी थी। वे कमरे में कहीं नज़र नहीं आएं। सब जल जाने और धुआँ कम हो जाने के बाद देखा तो उसी कमरे के एक कोने में फेंके चिथड़ों के गठ्ठर की तरह सोएं दिखाई पड़े।"[1]

श्री कृष्ण की मृत्यु ऋषि दुर्वासा के अभिशाप के कारण हुई। श्रीकृष्ण के वंश का भी सर्वनाश हो गया। इससे संबंधित भी एक पौराणिक कथा को उपन्यास में स्थान दिया गया है। यादव वंश व द्वारका जो बंद मुट्ठी की तरह थी । उसमें अब अनेक व्यसन पैदा हो गए थे। शराब, गांजा, जुआ बहुत आम बात हो गयी थी। यादव कुल के सभी राजकुमार व्यसन में डूबने लगे। एक दिन साम्ब व अन्य ने वन में तपस्या करने वाले ऋषि-मुनियों की परीक्षा की ठानी और साम्ब ने मटके की तली को अपने पेट पर इस प्रकार लगाया कि वह गर्भवती लगने लगा। उसके पश्चात वे ऋषि कश्यप, कण्व, नारद, विश्वामित्र के पास पहुँचे- "महर्षियों! सारण ने हाथ जोड़कर गम्भीरता से कहा- 'यह तेजस्वी बभ्रु की पत्नी हैं। बभ्रु के मन में पुत्र की बड़ी लालसा है। आप लोग सर्वज्ञ हैं। अच्छी तरह सोचकर बताएँ कि इसके गर्भ से क्या उत्पन्न होगा?"

ऋषि मारे क्रोध के काँपने लगे। उनकी आँखें लाल हो गईं चेहरा तमतमा उठा। बोले- 'क्रूर, धोखेबाज, दुष्ट, दुराचारी यादवकुमारो! कृष्ण का यह पुत्र साम्ब लोहे का एक भयंकर मूसल पैदा करेगा, जो तुम सभी यादवकुलों का नाश करेगा।"[2]

साम्ब ने सच में मूसल पैदा किया। सलाह-मशवरा करने के पश्चात मूसल का चूर्ण बनाकर नौकाओं से दूर समुद्र में फेंक दिया गया। परंतु वह लहरों के साथ पुनः तट पर आ गया और सरपट के

---

[1] उपसंहार,पृष्ठ-89

[2] वही, पृष्ठ-100

रूप में उग आया। 'ब्रजदिवस' के दिन नशे में धुत यादवों ने एक-दूसरे को उसी घास से मार डाला और यादव वंश का अंत हो गया।

इस प्रकार विवेच्य उपन्यास में पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर श्रीकृष्ण के अंतिम दिनों का चित्रण हुआ है। प्रायः देखा गया है कि इन पौराणिकताओं के पीछे आमजन की न्याय और मुक्ति की भावना होती है। मानवीय जीवन के अनेक प्रश्नों पर 'उपसंहार' उपन्यास नए सिरे से प्रकाश डालता है।

2.3 संस्कृति के स्तर पर

संस्कृति मानवीय जीवन की सांगोपांग अभिव्यक्ति है। मानव का संस्कृति में प्रवेश जन्म से ही होता है। यह प्रक्रिया जीवन भर चलती है। संस्कृति उतनी ही शाश्वत और चिरंतर है जितना कि स्वयं मनुष्य। डॉ. देवराज ने संस्कृति के विषय में लिखा है- "संस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की उन विशेषताओं का समूह है जो उस व्यक्तित्व को एक खास अर्थ में महत्वपूर्ण बनाता है ..... वस्तुतः संस्कृति उन गुणों का समुदाय है, जिन्हें मनुष्य अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है। संस्कृति का संबंध मुख्यतः मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव, मनोवृति से है।[1]

संस्कृति वास्तव में मनुष्य को संस्कारवान बनाती है। युग का प्रतिनिधित्व कैसे हो यह संस्कृति का विषय है। मानव को पशुओं से अलग संस्कृति ही करती है। संस्कृति के तत्वों तथा उपकरणों का संबंध मनुष्य की जिन क्रियाओं से है वे निम्न हैं- आदर्श परंपरा, रिवाज, विश्वास, सद्गुण, आध्यात्मिक मूल्य धर्म, अनुशासन, पारिवारिक व्यवस्था, न्याय, दंड, सम्मान, इत्यादि।

विश्व के विभिन्न देशों में अनेक प्राचीन व समृद्ध संस्कृतियां हैं। यही उन्हें विश्व पटल पर विशिष्ट पहचान दिलाती है। भारत भी उन्हीं चुनिंदा देशों में से एक है, जहाँ मानव अस्तित्व के समय से ही

[1] भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में), पृष्ठ-11

भारतभूमि सांस्कृतिक चेतना तथा क्रियाशीलता की क्रीडा भूमि रही है। 'भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं में से धर्म एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है। भारतीय संस्कृति में कर्म को ही धर्म कहा गया है। जो गीता का सार भी है। गीता, महाभारत, जैसे महाग्रंथ का ही एक अंश है। अतः 'उपसंहार' जोकि उत्तर महाभारत की कृष्ण कथा है'[1] के मूल में संस्कृति के सभी तत्व मौजूद हैं।

2.3.1 कर्म

लेखक ने कर्म की प्रधानता को सिद्ध करने वाले अनेकों उदाहरण 'उपसंहार' में दिए हैं कुरुक्षेत्र के युद्ध की याद करते हुए कृष्ण दाऊ से कहते हैं- "जब युद्धभूमि में दोनों सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हुईं, तो अर्जुन गांडीव फेंककर बैठ गया क्यों लड़े?... सभी सगे संबंधी हैं, किससे लड़े? मैंने मन में कहा- हुआ बंटाधार! तब मैंने लंबा चौड़ा भाषण पिलाया उसे। ...उसी में मैंने कहा कि तुम्हारा अधिकार सिर्फ कर्म करने में है, फल में नहीं। ...फल कर्म में ही निहित रहता है, भले दिखाई न दे।"[2]

भारतीय संस्कृति में कर्म को प्रधानता दी गई है। अतः लेखक ने उपन्यास में 'कर्म' को प्रधान रखा है।

2.3.2 त्योहार

वैदिक काल में जो देवासुर संग्राम हुआ। वह आज तक चल रहा है। देवों ने न केवल विरोधी असुरों को मारा, बल्कि उसे उन्होंने अपने धर्म की जीत भी घोषित किया और व्यापक स्तर पर उसका जश्न मनाया। लगभग सभी हिन्दू त्योहारों की बुनियाद में यही देवासुर संग्राम है, चाहे वह दुर्गापूजा हो, दशहरा, दिवाली या होली हो। 'उपसंहार' में भी होली का वर्णन है। जिसमें ब्रज की होली के साथ-साथ द्वारका में होली मनाने के भिन्न ढंग का चित्रण किया है। "द्वारकवासी चाहे वे जिस जाति या पेशे के हों,

[1] उपसंहार उपन्यास के मुख्य पृष्ठ पर

[2] उपसंहार, पृष्ठ-107

बसंत पंचमी के बाद से ही पगलाना शुरू हो जाते थे और होली आते–आते यह पागलपन शिखर पर पहुँच जाता था। गली से गुजरते हुए किसी भी औरत या मर्द का कहीं से भी एक बाल्टी पानी में नहा उठना आम बात थी। कुछ नहीं तो मुंह पर गोबर और कीचड़ लिथड़ जाना भी चल जाता था, लेकिन वे होली को दिमाग में रखते हुए रंज, ढोल, नगाड़ा, डफली, मजीरा आदि लेकर आए थे साथ ही मदिरा, गांजा, भी उनके पास थी...होली के दिन कृष्ण सुबह--सुबह नौका से शुद्धोद्वार चले गए... महिलाओं, बूढ़ों, बच्चों की खोज खबर लेने।''[1]

त्योहार भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं। लेखक ने भारतीय संस्कृति से परिचित कराने के लिए होली को भी अपने इस उपन्यास में कथानक का आधार बनाया है।

2.3.3 धर्म

भारतीय जीवन का मूलाधार धर्म रहा है। भारतीय संस्कृति के समस्त अंग उपांग सभी धर्म की परिधि में आते हैं। भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व रहा है। मानव जीवन के उन्नायक चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में धर्म का प्रमुख स्थान है। धर्म प्रधान संस्कृति में देवपरायणता की विशेषता होना अनिवार्य है। सत्कर्म करो, दुष्कर्म नहीं। इस भावना के वशीभूत होकर भारतीय जन अपना सर्वस्व देवताओं के लिए अर्पित कर देते थे। यह भाव लेखक से बचा नहीं है। अनायास ही यह उपन्यास में जगह जगह देखा जा सकता है। कृष्ण दारुक से कहते हैं- ''महाभारत शुरू होने से पहले जब दोनों पक्षों की सेनाएं आमने-सामने डंट गई तो धृतराष्ट्र ने संजय से जानकारी चाही। संजय ने गांधारी वगैरह को बुलाकर सबके सामने कहा- '**यतो कृष्णस्ततो धर्मः यतो धर्मस्ततो जयः**' यानि जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं जय है।''[2]

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-117,118

[2] उपसंहार, पृष्ठ-104

जहाँ धर्म हो वहाँ ईश्वर में आस्था होती है। 'उपसंहार' में भी ऐसे अनेक प्रसंग हैं। ऐसा ही एक प्रसंग दर्शनीय है-

"इन्ही दिनों द्वारिकवासियों ने देखा कि भल्लात द्वार पर बना अपना मंदिर छोड़कर कालभैरव नगर में घूम रहे हैं। ...वे क्या ढूंढ रहे हैं यादवों ने आपस में पूछा। किसी ने कहा– 'उस दिन मैंने भोग लगाने के लिए लड्डू दिया, नहीं लिया।'

दूसरों ने कहा – हमने लोटे में दूध चढ़ाया अस्वीकारकर दिया। वे इन सबका नहीं मदिरा का भोग लगाते हैं।"[1]

ऐसे कई उदाहरण उपन्यास में मौजूद हैं। धर्म की महत्ता को सिद्ध करने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा-

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।"[2]

2.3.4 सत्य एवं न्याय

भारतीय संस्कृति के विकास में सत्य, अहिंसा, करुणा जैसे गुणों का विशेष योगदान है। सर्वविदित है 'सत्य' को 'ईश्वर' की संज्ञा दी गयी है। 'सत्यं शिवं सुंदरं' को भारतीय संस्कृति का प्राण कहा जाता है। यहां सत्य को शिव के समान माना गया है। सतपुरुषों ने भी सत्य को व्यवहार में अपनाना ही श्रेष्ठ माना है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हमारी संस्कृति में बच्चों को बाल्यकाल से ही 'सत्य'

[1] उपसंहार, पृष्ठ-110
[2] भगवत गीता, गीता प्रेस, अध्याय-4, श्लोक-7,8

को अपनाने का संस्कार दिया जाता है। लेखक ने भी उपन्यास में इस संस्कार को प्रधानता दी है। ‘उपसंहार’ की कथा उत्तर महाभारत की कथा है। महाभारत जिसमें श्रीकृष्ण ने पांडवों को जिताने के लिये उन सभी हथकंडों का प्रयोग किया जो अनैतिक भी थे। या कहे कि जिनका आधार सत्य नहीं था। उन्हीं श्रीकृष्ण को पश्चाताप करते हुये ‘उपसंहार’ में जगह जगह दिखाया गया है-

“मुझे गहरी नींद आई ही थी कि कमरे में दरवाजों के पास से कोई चीज घिसटती हुई सी लगी, जैसे कोई घड़ियाल या मगर मेरी पलंग की ओर बढ़ा आ रहा हो। मैंने अंदर रोशनी की। देखा तो टूटी टाँग के साथ घिसटता हुआ दुर्योधन। उसने सिर उठाया और अपनी नहीं, मेरी आवाज में बोला। और वही बोला, जो युद्ध समाप्त होने पर पांडवों से बोला था मैं। आश्चर्य! 'सुनो, पांडवो सुनो! कौरव महायोद्धा थे। तुम धर्मयुद्ध में किसी प्रकार उन्हें पराजित नहीं कर सकते थे। इसलिए मैंने तुम्हारे कल्याण के लिए छल, कपट और माया के सहारे उनका संहार किया।”[1]

इस प्रकार कृष्ण के मन की ग्लानि देखी जा सकती है। एक उदारहण और दर्शनीय है-

“मैंने सूर्योपासना वे खत्म की और आँखें खोलीं, बगल में खड़े कर्ण को देखा। वह भी भीगे वस्त्रों में। मुसकराया- 'चकित मत हो वासुदेव! ये कुंडल देखकर। काम हो जाने के बाद इन्द्र ने इन्हें वापस कर दिया था मुझे।'

‘कवच नहीं दिया ?’

‘दे रहा था, मैंने ही नहीं लिया।’ कहा- ‘अब लेकर क्या करूँगा? जब जरूरत थी तब तो माँग लिया था। अब किस काम का?”[2]

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-105

[2] वही, पृष्ठ-105

इस प्रकार श्रीकृष्ण की बेचैनी स्पष्ट देखी जा सकती है कि किस प्रकार उन्होंने सत्य की लड़ाई असत्य से, न्याय को अन्याय के माध्यम से जीता। इस तरह भारतीय संस्कृति के अनेक तत्व उपन्यास में स्पष्टता देखें जा सकते हैं । कोई भी रचना जन मन से तभी जुड़ सकती है। जब उसकी अंतर्वस्तु जन मन की संस्कृति, संस्कारों से जुड़ी हो । 'उपसंहार' महाभारत पढ़ने वाले हर उस व्यक्ति के भावों को श्रीकृष्ण से जोड़ देता है, जिसने कुरुक्षेत्र के पश्चात श्रीकृष्ण को अपराधी मान लिया था । अंत: उपन्यास भारतीय संस्कृति की छाप कही जा सकती है। जो भारतीय संस्कृति को और अधिक पोषित करता है।

2.4 मिथक के स्तर पर

साहित्य और मिथक का घनिष्ठ संबंध रहा है। यह बात वैश्विक साहित्य पर भी भारतीय साहित्य की ही तरह लागू होती है। मिथक का सर्वमान्य अर्थ है ऐसा आख्यान जो प्राचीन काल में सत्य माना जाता था, जिसमें धार्मिक मान्यताओं, विश्वासों एवं प्रकृति के रहस्यों के साथ वीर पुरुषों और देवताओं का चित्रण था। इसमें किवदंती या पारंपरिक गाथा के रूप में कथा तत्व सदैव से उपस्थित रहा है। मिथक का दायरा इतना अधिक व्यापक है कि मानव जीवन का कोई भी क्रियाकलाप ऐसा नहीं जो मिथकीय न हो। परिभाषाओं के साथ देखें तो हिन्दी साहित्य में पहले पहल मिथक शब्द का प्रयोग हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'मिथक मीमांसा' में करते हैं और फिर अन्य आलोचक इसे अनेक संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। मिथक को लेकर अनेक मत, परिभाषाएं और विचार मिलते हैं जिनके निष्कर्ष में अगर जाएं तो मिथक कोरी कल्पना या इतिहास न होकर, उसके ब्याज से अपने समय का सामासिक यथार्थ प्रस्तुतीकरण भी होता है। बड़ी मात्रा में विश्व साहित्य मिथकों को आधार बनाकर रचा गया है। हिन्दी साहित्य भी मिथक व पौराणिक कथाओं की नींव पर अपने समय को परिभाषित करता है।

काशीनाथ सिंह के 'उपसंहार' के केंद्र में भी श्री कृष्ण हैं। कृष्ण जोकि भगवान विष्णु के अवतारों में से एक है व ईश्वरीय गुणों को लेकर पृथ्वी पर अवतरित हुए ताकि दुष्टों का संहार कर दीन-दुखियों के लिए शांतिपूर्ण दुनिया कायम कर सकें।

श्री कृष्ण के जीवन पर तो अनेक हिन्दी साहित्य में मिलता है परंतु सभी में कृष्ण के लीलाकारी, संहारक, समाजसेवी रूप, योगीराज कृष्ण, महाभारत के कृष्ण आदि रूपों का ही वर्णन अधिक मिलता है। धार्मिक आख्यानों में महाभारत पश्चात के कृष्ण को लगभग भुला ही दिया गया है। काशीनाथ सिंह ने उत्तर महाभारत की इस कथा के माध्यम से एक बार फिर श्री कृष्ण को नायक के रूप में कुछ भिन्न तरीके से स्थापित करने का चुनौतीपूर्ण काम किया है।

उपन्यास में कृष्ण को मानवीय भूमि पर खड़ा करने का साहस किया गया है। काशीनाथ सिंह ने उस कृष्ण का चित्रण करते हैं जो महाभारत युद्ध के भीषण नरसंहार से व्यथित हैं। आत्मावलोकन के इन क्षणों में यह पौराणिक चित्रण निहत्था है। वहाँ कोई ईश्वरीय कवच नहीं है वरन् वहाँ वह सामान्य मानव हैं। उपन्यास में स्वयं कृष्ण के माध्यम से ही ईश्वरत्व की व्याख्या करवा दी गई है- "प्रत्येक मनुष्य कभी न कभी कुछ पलों या क्षणों के लिए ही किसी न किसी का ईश्वर हुआ करता है, ऐसा एक नहीं कई बार हो सकता हैं। आखिर ईश्वर है क्या? मनुष्य के श्रेष्ठत्व का प्रकाश ही तो और यह प्रकाश सब के भीतर होता है। लेकिन फूटता तभी है जब किसी को कातर बेबस, निरुपाय और प्रताड़ित देखता है। मैं भी था ईश्वर। हाँ, मेरी अवधि किन्ही कारणों से थोड़ी लंबी खिच गई रही होगी।"[1] काशीनाथ सिंह के श्री कृष्ण महाभारत के युद्ध के पश्चात अमन, चैन, शांति, धर्म स्थापित करना चाहते थे परंतु हुआ उसका विपरीत। अतः कृष्ण के जीवन का अंतिम समय निराशा, पश्चाताप में बीता ।

महाभारत के दौरान श्रीकृष्ण ने जो छल किये थे उसकी कीमत उन्हें अपनी नींद और चैन की बली देकर चुकानी पड़ी। श्रीकृष्ण का ये रूप ईश्वरीय अलौकिकता से दूर एक ऐसे मनुष्य का है जिसकी असाधारण उपलब्धियों के पीछे खड़ी विफलताएं अब एक-एक करके सामने आ रही हैं। लेखक इसका

[1] उपसंहार, पृष्ठ-50

इशारा सर्वप्रथम कवर पृष्ठ पर ही करता है –"**चरम सफलता में निहित है एकाकीपन का अभिशाप**।"[1]

इस एकाकीपन में रह-रह कर कृष्ण को अपने छल याद आ रहे हैं। जैसे उनका अंतर्मन उनसे पूछ रहा हो कि धर्म की लड़ाई छल-कपट से क्यों लड़ी गयी। क्यों पडावों को जिताने के लिए वे युद्ध-नीति भूल अनीति पर उतर आएं। यही प्रश्न उनके मन को अस्थिर किये हुए है। इससे संबंधित एक उदाहरण हम 'उपसंहार' में देख सकते हैं-

"सूर्योपासना खत्म की और आँखें खोलीं, बगल में खड़े कर्ण को देखा। वह भी भीगे वस्त्रों में। मुसकराया- 'चकित मत हो वासुदेव! ये कुंडल देखकर। काम हो जाने के बाद इन्द्र ने इन्हें वापस कर दिया था मुझे।'

'कवच नहीं दिया?'

'दे रहा था, मैंने ही नहीं लिया।' कहा-'अब लेकर क्या करूँगा? जब जरूरत थी तब तो माँग लिया था। अब किस काम का??"[2]

महाभारत से पूर्व छल करके कर्ण से उसके कवच कुंडल छीन लिए गए। अब यही छल कृष्ण की बेचैनी के कारणों में से एक है। 'उपसंहार' में महर्षि दुर्वासा का रूप भी अपने मूल व्यवहार के करीब परंतु भिन्न दर्शाया गया है। दुर्वासा अपने गुस्से के लिए जाने जाते हैं और जब वो द्वारका आते हैं तो श्रीकृष्ण पूरी कोशिश करते हैं कि महर्षि दुर्वासा को गुस्सा न आए। यहां लेखक ने ईश्वर की मानवीय विवशता को इंगित किया है। जहाँ वे ऋषि दुर्वासा के आदेश पर नग्न हो जाते हैं–

"दुर्वासा ने कृष्ण की ओर देखा, कहा- 'अपने कपड़े उतारो।

---

[1] उपसंहार, कवर पृष्ठ

[2] उपसंहार, पृष्ठ-105

बूढ़े कृष्ण थोड़ा सकुचाए, फिर कपड़े उतार दिये। 'वह लँगोट भी।' डाँटकर दुर्वासा ने कहा।

...

...

शकट मँगवाया गया। दुर्वासा सामने से नौकरों-चाकरों को हटाते हुए छकड़े के पास पहुँचे, बैल की जगह रुक्मिणी के कन्धे पर जुआ रखा, चाबुक के साथ छकड़े पर बैठे और रुक्मिणी के कन्धे पर चाबुक मारते हुए चीखकर कहा- 'दक्षिणद्वार पुष्पदन्त की ओर चलो!''[1]

दुर्वासा जब द्वारका से जाते हैं तो वह उसको खंडहर जैसा बना जाते हैं जो द्वारका कृष्ण ने अपने साथियों के साथ पूरे मनोयोग से बनाई थी ताकि वहाँ शांतिपूर्वक रह सके। इस प्रक्रम में कृष्ण द्वारका के बसाने की कहानी भी कहते हैं-

''सभी दिशाओं में घूमकर देखने के बाद कृष्ण ने पूछा बलराम से 'दाऊ, कैसी रहेगी यह जगह?? बलराम उस समय द्वीप से सटे प्रभास क्षेत्र और रैवतक पर्वत का जायजा ले रहे थे। सोचते हुए बोले-'है तो अच्छी (किशन) लेकिन अपना कुल बड़ा है और द्वीप छोटा। कैसे (अटेंगे इतने लोग?'' सूर्य के प्रकाश में कृष्ण का किरीट चमक रहा था, मोरपंख हिल रहा था और हवा के झोंकों से पीताम्बर फहरा रहा था। आत्मविश्वास से भरे हुए कृष्ण ने कहा- 'चिन्ता नहीं। जरूरत हुई तो समुद्र पाटेंगे।''[2] द्वारका की साज सज्जा निर्माण सब कृष्ण ने ही करवाया है लेखक स्वयं कहता है- ''उपसंहार में कृष्ण के जीवन के अन्तिम दिनों की कथा कही गई है जो जितनी मार्मिक है उतनी ही उद्वेलक भी। यह जितनी कृष्ण की कथा है उतनी ही द्वारका के बनने और बिगड़ने की भी। कृष्ण महाभारत के सर्वप्रमुख चरित्र हैं- योगेश्वर, युगन्धर, लीला-पुरुष, पूर्णावतार और ईश्वर। द्वारका उनकी देन है, उनकी सृष्टि। लेकिन महाभारत जैसे

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-90

[2] वही, पृष्ठ-20

महायुद्ध के उपरान्त इसी द्वारका में कृष्ण का एक और रूप दिखलाई पड़ता है। यह रूप ईश्वरीय अलौकिकता से दूर एक ऐसे मनुष्य का है जिसकी असाधारण उपलब्धियों के पीछे खड़ी विफलताएँ अब एक-एक कर सामने आ रही हैं। जिस द्वारका को उन्होंने अपने मन-प्राण से साकार किया था वही तिनका-तिनका बिखर रहा है।"[1]

इस प्रकार कृष्ण के हाथों बसी द्वारका का कृष्ण के हाथों उजड़ना इस उपन्यास में मिथकीय संरचना को अधिक जीवंत बना देता है। कृष्ण उपन्यास के नायक हैं तो वही राधा, रुक्मणी भी मौजूद हैं। कृष्ण कथा के अनेकों पात्र दाऊ, दुर्योधन, पांडव इत्यादि मौजूद हैं और लेखक ने अपनी कल्पना के माध्यम से इस मिथकीय पात्रों के चरित्र के साथ न्याय किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह उपन्यास मिथकीय पात्रों की कथा को आधार बनाकर लिखा गया परंतु समकालीन जीवन से जुड़ा हुआ है।

2.5 शैली के स्तर पर

काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रयोग किया है। संवेदना और शिल्प की दृष्टि से उपसंहार इसका एक विशिष्ट उपन्यास है। पौराणिक युग की कथा में कथाकार ने आधुनिक युग के अनेक संदर्भों को जोड़ा है। प्रयोगशीलता काशीनाथ सिंह के कथा शिल्प की प्रमुख विशेषता है। इसके लिए कथाकार काशीनाथ सिंह ने अनेक शैलियों का प्रयोग किया है।

वर्तमान में शैली शब्द का प्रयोग चित्रकला, स्थापत्य कला, वस्तुकला आदि कलाओं और शिल्पों की क्षेत्रीय या कालीय शैलियों के लिए भी होता है। शैली की चर्चा करते हुये डा. भोलानाथ तिवारी कहते हैं- "स्टाइल शब्द भारोपीय परिवार की भाषाओं में, अपने मूल रूप में काफी पुराना है। अवस्ता में स्टएर, ग्रीक में स्टाइलोस तथा लैटिन में स्टाइलुस आदि रूपों में देखा जा सकता है।"[2]

[1] उपसंहार उपन्यास के आवरण पृष्ठ के पीछे की तरफ

[2] शैली विज्ञान, पृष्ठ-09

शैली शब्द अंग्रेजी शब्द स्टाइल के हिंदी पर्याय के रूप में प्रचलित है। भारतीय साहित्य कोष में डॉ. नगेन्द्र ने कहा है- "शैली का शब्दार्थ है किसी भी कार्य के सम्पादन का ढंग, प्रणाली, प्रकार अथवा पद्धति । साहित्य के संदर्भ में शैली का अर्थ, अभिव्यक्ति का वह धर्म जो उसे सौन्दर्य और प्रभविष्णुता का वैशिष्टय प्रदान करता है।"[1] लेखक के दिमाग में जब विभिन्न प्रकार की अनुभूतियां जन्म लेती है तो उसमें अभिव्यक्ति की लालसा उठती है। फलतः उन अनुभूतियों को शब्दबद्ध करके साहित्य की रचना करता है । साहित्य या रचना के सामान्यतः दो पक्ष होते हैं भाव पक्ष एवं कला पक्ष। भावपक्ष का सम्बन्ध लेखक के विचार, अनुभूति से होता है और कला पक्ष का सम्बन्ध अभिव्यक्ति से होता है। कला पक्ष का ही एक रूप शैली होता है। लेखक का उद्देश्य अपनी रचना को पाठकों तक सही रूप में पहुंचना होता है और इस प्रयास में उसे प्रयोग करने पड़ते हैं। शैली इन्हीं प्रयोगों का नाम है।शैली के संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र का विचार है- "अंग्रेजी शब्द स्टाइल Style रीति शब्द का पर्याय है।"[2]

शैली के कई प्रकार माने जाते हैं। एक ही रचना में लेखक अपने विचारों को संप्रेषित करने के लिए एक से अधिक शैली का प्रयोग करता है । कथानक के अनुसार शैली में परिवर्तन होता रहता शैली को मुख्य रूप से कई रूपों में बंटा जाता है। जैसे- समास शैली जिसमें बात में कसाव होती है। व्यास शैली जिसमें बात फैलाकर कही जाती है। सूत्रात्मक शैली इसमें बात सूत्र रूप में कही जाती है और कसाव अधिक होता है। संस्कृतनिष्ठ शैली, सरल शैली, व्यंग्यात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, आलंकारिक शैली, बिम्वात्मक शैली, विचारात्मक शैली, कथोपकथन शैली आदि शैलियों का प्रयोग लेखक अपनी रचनाओं में करता है।

2.5.1 संवाद शैली

---

[1] भारतीय साहित्य कोश, पृष्ठ-1270

[2] शैली विज्ञान,पृष्ठ-04

उपसंहार उपन्यास में संवाद शैली का भी उत्कृष्ट रूप मिलता है। संवाद कथा का विकास हुआ है तो कहीं चरित पर प्रभाव पड़ा और कहीं-कहीं उद्देश्य की भी अभिव्यंजना हुई है। संवाद अधिकांश संक्षिप्त है, कहीं प्रसंगानुकूल लंबे भी हैं। उपसंहार उपन्यास में युद्ध की समाप्ति पर बलराम कृष्ण से युद्ध के कारणों के बारें में पूछते है। वहाँ संवाद शैली का आकर्षण रूप मिलता है –

“ देखो किशन, यह पांडवों-कौरवों का पारिवारिक मामला है। घरेलू मामला है। इसमें हमें पड़ने की जरूरत नहीं।

‘नहीं दाऊ ,यह उनका घरेलू मामला नहीं है। यह वस्तुतः धर्म-अधर्म का, न्याय-अन्याय का, सत-असत का, प्रकाश-अंधकार का, ईमानदारी-बईमानी का मामला है। इतिहास-काल कल हमसे ,आपसे द्वारका से पूछेगा की जब आर्यवर्त में युद्ध हो रहा था, मार-काट मची थी, आग लगी थी, तब आप कहाँ थे? द्वारका कहाँ थी? नहीं पूछेगा? और तब क्या जवाब देंगे आप’?

बलराम हँसे- ‘किसी भी बात से सिद्धांत गढ़ लेना पुरानी आदत है तुम्हारी। हमारा कहना सिर्फ इतना था कि हम यहाँ ,वे आप तक हमारे सुख-दुख में कोई काम नहीं आए फिर क्यों पड़े हम उनके झमेले में’।”[1]

इस संवाद के माध्यम से लेखक युद्ध की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। द्वारका की स्थापना कृष्ण ने इसी उद्देश्य से की थी यहां रहकर युद्ध के बचे रहेंगे और शांति से द्वारका वासी जीवन यापन करेंगे। लेकिन कृष्ण ने पांडवों-कौरवों के मामले में हस्तक्षेप करके द्वारका को भी युद्ध में शामिल कर दिया।

महाभारत से युद्ध के बाद द्वारका लौटने पर कृष्ण दारुक से द्वारका की गलियों की स्थिति के बारे में जानकारी करते हैं , सभी गलियों में हाहाकार और कोहराम चारों तरह दिखाई पड़ता है क्योंकि

[1] उपसंहार, पृष्ठ-38

उनके घरों से गये बच्चे वापस नहीं आएं और न ही आयेंगे। इसलिए सभी घरों में विलाप की आवाज सुनाई देती है। इसका चित्रण लेखक संवाद शैली के माध्यम से करते हैं-

'दारुक!' कृष्ण के मुँह से अपने आप निकला- 'दारुक!'

'कुछ कह रहे हैं भगवन् ?'

'हाँ, दूसरे राजमार्गों और गलियों के भवनों में भी ऐसा ही है?"

'यह मैं कैसे बता सकता हूँ? मैं तो आपके साथ ही हूँ शुरू से।'

कृष्ण कुछ देर चुप रहे, फिर बोले- 'मेरी आँखों से आँसू क्यों नहीं आते?' 'भगवान कहीं रोते हैं?' दारुक ने हँसते हुए कहा।

'भगवान होने के लिए पत्थर होना जरूरी है क्या ??'

'यह तो आप जानें भगवन्, मैं क्या जानूँ!"[1]

लेखक ने संवाद शैली के माध्यम से द्वारका के घरों की स्थिति का चित्रण बड़ी ही कुशलता से करते हैं साथ ही भगवान बनने की शर्त का भी जिक्र करते हैं। भगवान बनने की पहली शर्त है कि उसके आंखों में आँसू नहीं आने चाहिए। इसका निष्कर्ष यह है कि भगवान कठोर ह्रदय वाला ही होता है।

2.5.2 परिदृश्यात्मक शैली

'उपसंहार' उपन्यास में दृश्यात्मक एवं परिदृश्यात्मक शैली के रूप में घटनाओं का चित्र भी मिलता है । इस उपन्यास में उन्होंने दृश्यात्मक और परिदृश्यात्मक प्रविधियों का समान अनुपात में कलात्मक प्रयोग मिलता है । कथाकार घटनाओं का वर्णन स्वयं उपस्थित होकर करता है वहाँ

[1] उपसंहार, पृष्ठ-17

परिदृश्यात्मक प्रविधियों का समान अनुपात में कलात्मक प्रयोग मिलता है। कथाकार घटनाओं का वर्णन स्वयं उपस्थित होकर करता है वहाँ परिदृश्यात्मक एवं जहाँ कथाकार स्वयं नेपथ्य में चला जाता है एवं कथा का विकास स्वयं पात्रों के द्वारा होता है। इसमें दृश्य अधिक निकट उपस्थित हो जाता है। परिदृश्यात्मक प्रविधि का एक उदाहरण-

" ऐसे तो हस्तिनापुर में धर्मराज्य की स्थापना के बाद से कृष्ण निश्चित थे

धर्मराज युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम की क्षमताओं से

फिर भी उनका एक अवसर चला जाता था उनकी ओर

कि वे कैसे हैं?

की राजकाज कैसा चल रहा है?

प्रजा कितनी सुखी है?

कि राज्य की सीमाओं पर तो अब खतरे नहीं हैं।"[1]

2.5.3 बिम्बात्मक शैली

काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास में बिम्बों का चित्रण बीच बीच में किया है। जो इनके लेखन कौशल की विशेष कला को दर्शाता है। उपन्यास की शुरुआत ही बिम्बात्मक शैली से होती है। जिस बारीकी से वर्णन द्वारा बिम्ब बनाते हैं यह इनकी अद्भुत लेखन क्षमता को प्रदर्शित करता है। युद्ध से लौटे घोड़े का चित्रण करते हुए लेखक लिखता है-

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-50

"घोड़ा वही खड़ा था-अगले पैर पानी में, पिछले पैर रेत में, जैसे वह दुविधा में हो कि आगे बढ़े या पीछे लौटे।

घोड़ा चितकबरा था और भीगा भी। शायद पसीने से तर-ब-तर। उसके जबड़े पर अब भी झाग थे, जैसे बहुत लंबा सफर तय करके आया हो। सूर्योदय हो चुका था और उसकी किरणें जल की सतह पर पहुँचने के लिए कुहरे से जूझ रही थी"।[1]

काशीनाथ सिंह अपने इस उपन्यास में बिम्बात्मक शैली का प्रयोग काफी मात्रा में किया है। इस चित्रण में युद्ध से आएं घोड़े का चित्रण है कि वह किस तरह से समुद्र के समीप खड़ा है और वह कोई लंबी दूरी तय करके आया है जिससे वह थक-सा गया है। विवेच्य उपन्यास उपसंहार में काशीनाथ सिंह ने कृष्ण की स्थिति का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है। जिसका चित्रण इस प्रकार है-

"कृष्ण सोए हुए हैं

चन्दन का पलंग, मखमली गद्दा, सेमल का रेशमी तकिया

...

...

वैजयन्तीमाला की पँखुड़ियों के साथ

कृष्ण लेटे हुए हैं और देख रहे हैं।"[2]

काशीनाथ सिंह ने कृष्ण के पौराणिक रूप का चित्रण करने का प्रयास किया है। नीला परिधान कृष्ण का मनपसंद परिधान माना जाता है,वही मोरपंख का संबंध भी पौराणिक रूप से कृष्ण से संबंधित है। वैजयंती

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-09

[2] उपसंहार, पृष्ठ-27

माला भी कृष्ण का पारंपरिक आभूषण है। इस तरह काशीनाथ सिंह ने कृष्ण के पारंपरिक रूप का चित्रण किया है।

2.5.4 सूत्रात्मक शैली

काशीनाथ सिंह ने उपसंहार में सूत्रात्मक शैली का प्रयोग कई बार किया है। जब कोई बात कम शब्दों में और गहरे अर्थों में कहनी होती है तो सूत्रात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है। इस उपन्यास के कवर पेज पर ही सूत्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

"चरम सफलता में निहित है एकाकीपन का अभिशाप।"[1]

उपसंहार उपन्यास का ध्येय वाक्य इसी सूत्र को माना जा सकता है। कृष्ण के चरम सफलता प्राप्त कर लेने बाद भी वे किस प्रकार से सबसे अकेले हो जाते हैं। इसका चित्रण काशीनाथ सिंह ने विवेच्य उपन्यास में किया है। कृष्ण के एकाकीपन को लेखक ने प्रमुखता से चित्रित भी किया है। कृष्ण जब द्वारका की स्थिति को देखकर दुखी होते हैं, अपने बच्चों के व्यवहार को देखते हैं तो दुखी होने के बाद भी वो इस पीड़ा को किसी को बता नहीं पाते हैं और अंदर ही अंदर बैचैन रहते हैं। यही एकाकीपन इस उपन्यास का सूत्र वाक्य कहा जाता है। साथ ही जब कृष्ण अपने अंतिम समय की सांसें ले रहे होते हैं तो उसके आसपास कोई भी द्वारका का नहीं होता है। वह पूरी तरह से अकेले होते हैं।

कृष्ण युद्ध के पश्चात द्वारका में होते हैं तो वह अनुभव करते हैं कि पहले द्वारका के लोग या प्रकृति उनके साथ जैसा व्यवहार करती थी उसके व्यवहार में अब परिवर्तन आ गया है। कृष्ण मंत्रों का उच्चारण ठीक तरह से नहीं कर पाते हैं, संध्या वंदन भी ठीक तरह से नहीं कर पा रहे हैं और समुद्र भी उनका स्वागत अब नहीं कर रहा है वह भी कृष्ण को देखकर दहाड़ रहा है। तभी काशीनाथ सिंह कृष्ण से द्वारका और प्रकृति में आये बदलाव को इस सूत्र वाक्य के माध्यम से बताते हैं-

---

[1] उपसंहार, मुख्य पृष्ठ कवर

"प्रत्येक मनुष्य कभी न कभी कुछ पलों या क्षणों के लिए ही सही किसी न किसी का ईश्वर हुआ करता है. ऐसा एक नहीं कई बार हो सकता है. आखिर ईश्वर है क्या ? मनुष्य के श्रेष्ठत्व का प्रकाश ही तो और यह प्रकाश सब के भीतर होता है लेकिन फूटता तभी है जब किसी को कातर बेबस, निरूपाय और प्रताड़ित देखता है. मैं भी था ईश्वर, हाँ मेरी अवधि किन्हीं कारणों से थोड़ी लम्बी खिंच गई रही होगी।"[1]

कृष्ण का कहना है कि जब मनुष्य का ह्रदय कठोर हो जाता है, जब वह किसी के दुख को कम या खत्म नहीं कर पाता है तो उसका ईश्वरत्व खत्म हो जाता है क्योंकि बिना श्रेष्ठ गुणों के कोई ईश्वर नहीं बन सकता है। द्वारका की स्थिति अब ऐसी है कि कृष्ण इस दुख को दूर नहीं कर पा रहे हैं। यही से उनके ईश्वरत्व पर लेखक द्वारा प्रश्नचिह्न उठाया गया है।

2.5.5 व्यंग्यात्मक शैली

काशीनाथ सिंह ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग भी इस उपन्यास में किया है। लेकिन इसमें इसका प्रयोग कम ही है। इससे पहले के उपन्यास काशी का अस्सी में काशीनाथ सिंह जी काफी जगहों पर इस शैली का प्रयोग किया है। महाभारत युद्ध के विजय के पश्चात हस्तिनापुर की स्थिति का चित्रण लेखक ने व्यंग्य के माध्यम से किया है। हस्तिनापुर में अकाल आने पर युधिष्ठिर किस तरह से अपनी जिम्मेदारियों से बचने की कोशिश करते हैं इसका चित्रण लेखक ने व्यंग्य के माध्यम से किया हैं-

"..लेकिन , अकाल का भी सुन लो! युधिष्ठिर ने फिर भाइयों की सभा बुलाई।

उनके शुरू करने के पहले ही भीम ने पूछा-'अबकी तीर्थाटन पर कहाँ जाने का इरादा है?' युधिष्ठिर खुश हो गए। उन्होंने भीम के व्यंग्य को नहीं समझा। बोले- 'अरे भीम! तुम तो बड़े समझदार हो! कैसे जान लिया तुमने?'।"[2]

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-50

[2] उपसंहार, पृष्ठ-59

युधिष्ठिर जब भी हस्तिनापुर पर कोई विपत्ति आती है या अकाल पड़ता है तो वे अपनी जिम्मेदारियों को भाइयों के ऊपर डालकर खुद तीर्थाटन चल देते हैं। लेखक इस प्रसंग के माध्यम से महाभारत के युद्ध पर भी प्रश्नचिह्न उठाते हैं कि क्या इसी के लिए युद्ध में इतने सारे लोगों की हत्या की गई थी कि राज्य पर जब कोई विपत्ति आये तो राजा अपनी जिम्मेदारियों से बच कर भाग जाएं।

2.5.6 वर्णनात्मक शैली

काशीनाथ सिंह ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए गोपाल भोज से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर महाभारत के अठारह दिनों में घटित हुई घटनाओं का वर्णन करते हैं। जो इस प्रकार है-

"अठारह दिनों तक चला महायुद्ध अन्ततः खत्म हो गया।

आर्यावर्त का कोई ऐसा राज्य नहीं, नरेश नहीं, जो इस या उस पक्ष से न रहा हो। तीनों लोकों में पाया जाने वाला ऐसा कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं था, जिसका उपयोग न हुआ हो। सबसे भयानक और अचूक दिव्यास्त्र देवताओं से मिले हुए थे, ऐसे कि छोड़े जाएँ, तो धरती बंजर हो जाए, नदियाँ सूख जाएँ, पहाड़ समतल हो जाएँ और वे सब के सब छोड़े गए थे।

...

प्रतिदिन युद्ध समाप्त होने के बाद परिजन-स्वजन आते मशालें लिये हुए और लाशों के मलबे में अपने घायल या मृत रिश्तों-नातों को ढूँढ़ते। भेड़ियों, लकड़बग्धों, गीदड़ों और कुत्तों के जबड़ों के बीच से चीख-पुकार करते घायलों को पहचान लेना और बचा लेना साधारण काम नहीं था।

पूरा कुरुक्षेत्र भयावह दुर्गन्ध से भर गया था। ऐसी बदबू कि जहर। साफ-सुथरी हवाओं ने बन्द कर दिया था आना उस परिक्षेत्र में।"[1]

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-12

इस तरह वर्णन द्वारा महाभारत के अठारह दिनों में घटित घटनाओं का चित्रण लेखक ने किया।

काशीनाथ सिंह ने दुर्वासा ऋषि के द्वारक प्रवास के दौरान उनके द्वारा किये गए कृत्यों को वर्णनात्मक शैली में लिखा है। दुर्वासा ऋषि के द्वारा द्वारका के खंडहर बनाएं जाने का वर्णन इस प्रकार है-

> "पहले ही दिन वे महल की शीशे की सारी खिड़कियाँ तोड़ते रहे-कुछ हथौड़े से, कुछ ईंट-पत्थर से।
>
> जितने दरवाजों को उखाड़ा जा सकता था, उखाड़ डाले।
>
> संग्रहालय में रखी गोकुल, मथुरा, द्वारका की अनमोल वस्तुएँ और धरोहरें उठा-उठाकर जंगल में जहाँ-तहाँ फेंक आए।
>
> ...
>
> एक दिन लोगों ने उनके कमरे से धुआँ उठता देखा। झाँककर देखा तो कालीन, गद्दे, तकिए, पलंग-सभी में आग लगी थी। वे कमरे में कहीं नजर नहीं आए। सब जल जाने और धुआँ कम हो जाने के बाद देखा तो उसी कमरे के एक कोने में फेंके चिथड़ों के गट्ठर की तरह सोए दिखाई पड़े।"[1]

दुर्वासा ऋषि के जाने से पहले द्वारका पूरी तरह खंडहर में तब्दील हो जाता है। द्वारका को बर्बाद करने के साथ ही ऋषि द्वारा कृष्ण और रुक्मणी को अपमानित भी किया जाता है। उन्हें पूरे नगर में नंगे घुमाया जाता है। यह चित्रण इस उपन्यास को और भी गंभीर बना देता है। ऐसा लगता है कि लेखक इस प्रसंग के माध्यम से वर्तमान समय में हो रहे स्त्रियों के शोषण को उद्घाटित करने का प्रयास करता है।

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-13

इस प्रकार मिथक उपन्यास की भाषा पर प्रकाश डालने के साथ ही विवेच्य उपन्यास ‘उपसंहार’ का मिथिकीय स्तर पर विश्लेषण करने पर हमें उसके तत्वों की जानकारी प्राप्त हुई साथ ही उसके मूल में संस्कृति और मिथक के जो तत्व मौजूद हैं उसकी भी जानकारी प्राप्त हुई। इसके साथ अगले अध्याय में विस्तृत रूप विवेच्य उपन्यास ‘उपसंहार’ का भाषिक विश्लेषण किया गया है। जो इसी विश्लेषण को आगे और विस्तार प्रदान करता है।

अध्याय-3

‘उपसंहार’ उपन्यास का भाषिक विश्लेषण

हर रचनाकार पर उसके समय और समाज का गहरा प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव जितना तीव्र होता है रचनाकार की रचनाओं में उसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में समय अथवा समाज के प्रभाव के परिणामस्वरूप ही परंपरागत रचनाओं की संवेदना और शिल्प में लचीलेपन की सृष्टि हुई है और नए नए वस्तु एवं शिल्प में रचनाओं का सृजन हुआ । इस संदर्भ में पुष्पपाल सिंह अपनी पुस्तक ‘21वीं शती का हिंदी उपन्यास’ में लिखते हैं- “ रचनाकार अपने परिवेश, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि स्थितियों के संघात उसे जिस रूप में आलोड़ित, दिलोडित किये रहते हैं, वे ही उसकी कृति में भिन्न रूपों में प्रतिच्छायित होते हैं। रचनाकार का यही मानसिक आलोड़न-विडोलन जितना तीव्र होता है, उतने ही वेग से उसकी कृति में विस्फोट होता है। इस तीव्र वैचारिक विस्फोट को वहन करने की क्षमता विधा के प्रचलित ढांचे को तोड़ती हुई उसे विकास की एक नयी मंजिल पर ले जाकर खड़ा कर देती है। 21वीं सती के उपन्यास के शैल्पिक ढांचे में भी इसी रूप में निरंतर विस्फोट एवं परिवर्तन होते रहे हैं”।[1]

‘उपसंहार’ उपन्यास का एक प्रमुख आकर्षक बिंदु नयी भाषिक संरचना है जो लोक भाषा, मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों के रूप में औपन्यासिक शिल्प को नया रूप देते हैं। समकालीन उपन्यासकारों ने कथ्य के अनुरूप ही भाषिक संरचना निर्मित की । इस उपन्यास में प्रतीकात्मकता की भी सृष्टि की है। उपन्यासकार काशीनाथ सिंह जी ने इस उपन्यास में कथा कहने की एक विशिष्ट शैल्पिक संरचना निर्मित की जो उनका अपना है । इस उपन्यास में एक तरफ अब तक चली आ रही औपन्यासिक परंपरा को नकार कर नवीन शिल्प संरचना के दर्शन होते हैं, तो दूसरी तरफ लेखक टूटते सामाजिक

[1] 21वीं शती का हिंदी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ-40

मूल्यों, सामाजिक अंतर्द्वंद्व, राजनीतिक दांवपेच आदि को नये फार्म में प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल हुए हैं।

'उपसंहार' काशीनाथ सिंह का नवीनतम उपन्यास है। संवेदना और शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास विशिष्ट है। इस उपन्यास में काशीनाथ सिंह ने नवीन प्रयोग किया है। उन्होंने द्वापर युग की कथा महाभारत की उत्तर कथा को इस उपन्यास का केंद्र बिंदु बनाया है। नए नए प्रयोग काशीनाथ सिंह के कथा शिल्प की प्रमुख विशेषता है। उनका कथा साहित्य लेखन लगातार किसी एक ढर्रे का अनुसरण नहीं करता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठकों एवं आलोचकों को सर्वदा आकर्षित किया है।

विवेच्य शोध विषय 'उपसंहार उपन्यास का भाषिक विश्लेषण' के आधार पर उपसंहार उपन्यास के भाषिक संरचना को समझने का प्रयास किया गया है। काशीनाथ सिंह ने किस तरह की भाषिक संरचना का प्रयोग किया है यहां इसका विवेचन किया गया है। इस विश्लेषण के आधार पर तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों को खोजने का प्रयास किया गया है। चूंकि इस उपन्यास के कथानक का आधार मिथकीय और पौराणिक कथावस्तु है। इसलिए मिथकीय शब्दों को भी प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। मिथक आधार होने के कारण कुछ विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ भी हैं जिनकी चर्चा की गई है। श्री काशीनाथ भाषा की दृष्टि से एक सजक रचनाकार है। उनके हर उपन्यास की भाषिक संरचना भी भिन्न भिन्न होती है। भाषिक कुशलता में शब्द शक्तियों की चर्चा की गई है। सामान्य लोक व्यवहार की भाषा आधार होने के फलस्वरूप इसमें पर्यायवाची, लोकोक्ति, मुहावरों की भी चर्चा की गई है। वाक्य और प्रोक्ति ही सम्प्रेषण का सबसे प्रमुख तत्व है। इसलिए इन दोनों का भी अध्ययन और विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

3.1 शब्द के स्तर पर

मनुष्य अपनी भावाभिव्यक्ति हेतु कुछ संकेतों का प्रयोग करता है। संसार का समस्त ज्ञान शब्द मूलक है। समस्त विधाएँ, समस्त कलाएँ तथा समस्त शिल्पशास्त्र शब्दशक्ति से संबंधित हैं। शब्द ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे समस्त वस्तुओं का विवेचन किया जा सकता है। शब्द एवं उसके अर्थ में अंतः संबंध का ज्ञान होता है। शब्द के द्वारा निर्दिष्ट वस्तु का ज्ञान होता है, किंतु शब्द वस्तु आदि सभी चीजों से भिन्न है। पहले उसका निजी स्वरूप प्रकट होता है और उसके पश्चात् ही उसका अर्थ बोध होता है। हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वानों तथा भाषा वैज्ञानिकों ने शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा शब्द की परिभाषा इस प्रकार देते हैं- ‘‘उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द।’’[1] डॉ. भोलानाथ तिवारी अपनी पुस्तक 'भाषा-विज्ञान' में शब्द की परिभाषा इस प्रकार करते हैं- ‘‘शब्द अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई है।’’[2] हिंदी व्याकरण के लेखक कामताप्रसाद गुरु अपने ग्रंथ ‘हिंदी व्याकरण’ में शब्द के विषय में लिखते हैं- ‘‘एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं।’’[3] भाषिक संरचना में शब्दों का वर्गीकरण चार आधारों पर किया जाता है-

- उत्पत्ति के आधार पर- तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी
- बनावट के आधार पर- रुढ़, यौगिक, योगरूढ़
- रूप के आधार पर- विकारी, अविकारी
- अर्थ के आधार पर- एकार्थी, अनेकार्थी, भिन्नार्थी, विलोम, प्रश्नार्थक

[1] हिंदी शब्द समूह का विकास, डॉ. सत्यव्रत, पृष्ठ-8
[2] हिन्दी शब्द समूह का विकास, डॉ. सत्यव्रत, पृष्ठ-9
[3] व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृष्ठ-18

विवेच्य उपन्यास 'उपसंहार' में इन सभी आधारों पर शब्द प्रयोग मिलता है। व्युत्पत्ति के आधार पर किसी भी रचना को समझने व उसके भाषिक अभिव्यक्ति को समझने के लिए आवश्यक है कि उसमें प्रयुक्त शब्दों की उत्पत्ति का आधार कहाँ से है? किसी रचना में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है या आम बोलचाल की भाषा का हुआ है। उपन्यासकार काशीनाथ ने कथानक का आधार मिथक होने की वजह से संस्कृत से आये शब्दों का भी प्रयोग किया है और भाषा के प्रवाह का बनाएं रखने, क्लिष्ट होने से बचाने के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग भी किया है। पौराणिक कथा होने के बाद भी भाषा कहीं भी कठिन नहीं लगती है। ये रचनाकार की एक बड़ी उपलब्धि मानी जानी चाहिए।

विवेच्य उपन्यास 'उपसंहार' में प्रयुक्त शब्दों का वर्गीकरण और विवेचन निम्न है-

3.1.1 तत्सम शब्द

वे शब्द हैं, जो अपने मूल स्वरूप में हिंदी भाषा में प्रचलित होते हैं उन्हें तत्सम शब्द कहा जाता है। काशीनाथ सिंह ने उपसंहार उपन्यास में तत्सम शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। जैसे-

- निष्णात् (पृष्ठ-10)
- सन्निपात (पृष्ठ-10)
- जिज्ञासा (पृष्ठ-10)
- स्वाभाविक (पृष्ठ-10)
- उदय (पृष्ठ-12)
- अस्त (पृष्ठ -12)
- दुर्गन्ध (पृष्ठ-12)
- किरण (पृष्ठ-9)
- शवयात्रा (पृष्ठ-13)

- अक्षत (पृष्ठ-14)
- वक्ष (पृष्ठ-14)
- विश्राम (पृष्ठ-14)
- ऐश्वर्य (पृष्ठ-16)
- नष्ट (पृष्ठ-19)
- परिक्षेत्र (पृष्ठ-21)
- अभेद्य (पृष्ठ-22)
- सौन्दर्य (पृष्ठ-22)
- सर्वज्ञ (पृष्ठ-22)
- निःशंक (पृष्ठ-23,
- प्रवीण (पृष्ठ-28)
- आश्वस्त (पृष्ठ-24)
- वध (पृष्ठ-28)
- धनाढ्य (पृष्ठ-31)
- साक्षात् (पृष्ठ-32)
- स्फूर्ति (पृष्ठ-36)
- प्रतिक्रिया (पृष्ठ-37)
- न्याय (पृष्ठ -38)
- प्रतीक्षा (पृष्ठ -42)

- चमत्कृत (पृष्ठ-51)
- निष्कंटक (पृष्ठ-54)
- उत्तेजना (पृष्ठ-64)
- कैशोर्य (पृष्ठ-103), आदि।

3.1.2 तद्भव शब्द

वे शब्द जो या तो सीधे प्राकृत से हिंदी भाषा में आ गए हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं तद्भव शब्द कहलाते हैं अथवा वे शब्द, जो 'तत्' अर्थात् संस्कृत से 'भव' अर्थात् 'उत्पन्न' या 'विकसित' हैं। उच्चारण की सुविधानुसार परिवर्तित होकर ये हिंदी में प्रयुक्त होते हैं । उपन्यासकार काशीनाथ सिंह के 'उपसंहार' उपन्यास में तद्भव शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। जैसे-

- खत्म (पृष्ठ-11)
- लाश (पृष्ठ-11)
- बदबू (पृष्ठ-12)
- फूल (पृष्ठ-13)
- आसमान (पृष्ठ-11)
- गज्जू (पृष्ठ-14)
- छपरी (पृष्ठ-15)
- लल्ला (पृष्ठ-19)
- कन्हैया (पृष्ठ-71)
- झुंड (पृष्ठ-19)

- पहाड़ (पृष्ठ-20)
- खींचातानी (पृष्ठ-23)
- पलंग (पृष्ठ-23)
- रंभाना (पृष्ठ-34)
- बछिया (पृष्ठ-35)
- ब्याह (पृष्ठ-36)
- खतम (पृष्ठ-37)
- अव्वल (पृष्ठ-40)
- झुरमुट (पृष्ठ-46)
- पाँव (पृष्ठ-46)
- अंधा (पृष्ठ-53)
- चुलबुले (पृष्ठ-55)
- आसमान (पृष्ठ-55)
- डरपोक (पृष्ठ-61), आदि।

3.1.3 विदेशी शब्द

फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी आदि भाषाओं के जो शब्द हिंदी में ग्रहण किये गये हैं, वे विदेशी शब्द कहलाते हैं। कामताप्रसाद गुरु विदेशी शब्द के विषय में अपने 'हिंदी व्याकरण' पुस्तक में लिखते हैं- "हिंदी में अंग्रेजी से आजकल भी शब्दों की भरती जारी है। विदेशी शब्द हिंदी में ध्वनि के अनुसार अथवा बिगाड़े हुए उच्चारण के अनुसार लिखे जाते हैं। इस विषय का पता लगाना कठिन है कि हिंदी में किस किस समय पर कौन से विदेशी शब्द आए हैं: पर ये शब्द भाषा में घुल मिल गए हैं और इनमें

कोई कोई शब्द ऐसे हैं जिनके समानार्थी हिंदी शब्द बहुत समय से अप्रचलित हो गए हैं।"[1] हिंदी के विदेशी शब्दों में फारसी शब्दों की संख्या सर्वाधिक है क्योंकि फारसी मुगल काल में फ़ारसी शिक्षा और शासन की भाषा रही है। अतः इसका हिंदी पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। अरबी, तुर्की भाषा के शब्द भी फ़ारसी के माध्यम से ही हिंदी भाषा में प्रचलित हैं।

काशीनाथ सिंह ने भाषा के प्रवाह में अपनी कहानी या उपन्यास का लेखन नहीं किया है बल्कि विषय-वस्तु के अनुरूप रुककर, देखकर, चिंतन करके विषयानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है। काशीनाथ ने पात्रों के अनुकूल भाषा का व्यवहार किया है। इसी के कारण ये भाषा के स्तर पर अपनी रचना के साथ न्याय करने में सफल भी होते हैं। इस प्रकार के भाषा प्रयोग से रचना में रसात्मक बोध होता है। काशीनाथ सिंह के साहित्य में विदेशी शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है जो सहज प्रवाह में स्वाभाविक रूप से प्रयोग किये गए हैं। विवेच्य उपन्यास उपसंहार पौराणिक पृष्ठभूमि का होने के बाबजूद उसमें विदेशी शब्द जैसे अरबी, फारसी, उर्दू शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। ये प्रयोग कहीं भी भाषा प्रवाह को बाधित नहीं करते हैं बल्कि उसे और गतिशीलता प्रदान करते हैं। उपसंहार में प्रयुक्त विदेशी शब्द कुछ इस प्रकार हैं-

- **अरबी के शब्द-** हिदायत (पृष्ठ-35), फुर्सत (पृष्ठ-34), हैसियत (पृष्ठ-29), हाशिये (पृष्ठ-29), मतलब (पृष्ठ-49), हराम (पृष्ठ-81), मिसाल (पृष्ठ-104), आदि।
- **तुर्की के शब्द-** लाश (पृष्ठ-11), तलाश (पृष्ठ-112), आदि।
- **फ़ारसी के शब्द-** पेशा (पृष्ठ-22), मखमल (पृष्ठ-53), आदि।
- **उर्दू के शब्द-** फालतू (पृष्ठ-55), कानून (पृष्ठ-55), बेइन्तहा (पृष्ठ-56), आदि।
- **अंग्रेजी के शब्द-** गिलास (पृष्ठ-58), आदि।

[1] व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृष्ठ-34

3.1.4 देशज शब्द

देशज वे शब्द होते हैं जो किसी संस्कृत मूल से निकले न हो और जिनकी व्युत्पत्ति पता नहीं लग पाता है। ऐसे शब्द देशज कहलाते हैं।

काशीनाथ सिंह के विवेच्य उपन्यास 'उपसंहार' में देशज शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। उपन्यास में प्रयुक्त कुछ देशज शब्द इस प्रकार हैं-

- खिचड़ी (पृष्ठ-48)
- खिड़कियां (पृष्ठ-90)
- गमछे (पृष्ठ-28) आदि।

अतः उपरोक्त विषय के अनुसार यह कह सकते हैं कि काशीनाथ के विवेच्य उपन्यास 'उपसंहार' में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है। जो लेखक के शब्द भंडार के ज्ञान को दर्शाता है। ये काशीनाथ सिंह की बड़ी उपलब्धि है कि उन्होंने जहाँ जैसे शब्दों की जरूरत हुई वहाँ वैसे ही शब्दों का प्रयोग खुले मन से किया है।

3.1.5 समास

समास शब्द दो शब्दों 'सम्' एवं 'आस' के मेल से बना है जिसका अर्थ है 'संक्षिप्त कथन'। समास दो या दो से अधिक शब्दों से मिल कर बने हुए नए सार्थक शब्द को समास कहते हैं। समास के योग से बना शब्द सामासिक शब्द कहलाता है। काशीनाथ सिंह के 'उपसंहार' में सामासिक शब्दों का भरपूर प्रयोग देखने को मिलता है। अपने लघु शोध विषय 'उपसंहार का भाषिक विश्लेषण' के अंतर्गत इस उपन्यास में प्रयुक्त सामासिक शब्दों को खोजने का प्रयास है। समास के छ: प्रकार माने गए हैं।

विवेच्य उपन्यास 'उपसंहार' में प्रयुक्त समास का विवेचन इस प्रकार है-

तत्पुरुष समास- इस समास में बाद का अथवा उत्तर पद प्रधान होता है तथा दोनों पदों के बीच का कारक चिन्ह लुप्त हो जाता है। इस में पहला शब्द प्रायः संज्ञा या विशेषण होता है। उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे-

- न्यायानुसार (पृष्ठ-61)
- स्वर्णजड़ित (पृष्ठ-14)
- जलमग्न (पृष्ठ-14)
- युधिष्ठिर (पृष्ठ-40)
- राजमहल (पृष्ठ-18)
- रक्तरंजित (पृष्ठ-106)
- अस्त्रहीन (पृष्ठ-106) आदि।

नञ् समास - जिस समास के पूर्व पद में निषेधसूचक / नकारात्मक शब्द (अ, अन् न, ना, गैर आदि) लगे हों, नञ् समास कहलाता है। जैसे-

- अनदेखा (पृष्ठ-14)
- अपवित्र (पृष्ठ-116)
- अनपक (पृष्ठ-117)
- अनमोल (पृष्ठ-64)
- अविचल (पृष्ठ-29),आदि।

कर्मधारय समास- जिस समस्त पद का उत्तरपद प्रधान हो तथा पूर्वपद व उत्तरपद में उपमान-उपमेय अथवा विशेषण विशेष्य संबंध हो, कर्मधारय समास कहलाता है। जैसे-

- पुरुषोत्तम (पृष्ठ-15)
- सोमनाथ (पृष्ठ-118) आदि।

द्विगु समास- जिस समस्त पद का पूर्वपद संख्यावाचक विशेषण हो, वह द्विगु समास कहलाता है। इसमें समूह या समाहार का ज्ञान होता है। जैसे-

- दोपहर (पृष्ठ-13)
- चौराहे (पृष्ठ-22) आदि।

द्वंद्व समास- जिस समस्त पद के दोनों पद प्रधान तथा विग्रह करने पर 'और', 'अथवा', 'या', 'एवं' लगता हो, वह द्वंद्व समास कहलाता है। जैसे-

- फूल-मालाएं (पृष्ठ-13)
- अस्त्र-शस्त्र (पृष्ठ-15)
- गुल्ली-डंडा (पृष्ठ-15)
- नाती-पोते (पृष्ठ-115)
- बाप-दादा (पृष्ठ-115)
- चीख-पुकार (पृष्ठ-116)
- नाचते-गाते (पृष्ठ-117)
- खोज-खबर (पृष्ठ-117) आदि।

बहुव्रीहि समास- जिस समस्त पद में कोई पद प्रधान नहीं होता, दोनों पद मिल कर किसी तीसरे पद की ओर संकेत करते हैं, उसमें बहुव्रीहि समास होता है। जैसे-

- पीताम्बर (पृष्ठ-14)

- महादेव (पृष्ठ-119) आदि।

अव्ययीभाव समास- जिस समास का पहला पद (पूर्व पद) अव्यय तथा प्रधान हो, उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। जैसे-

- प्रतिक्रिया (पृष्ठ-37) आदि

3.1.6 संधि विच्छेद

दो समीपवर्ती वर्णों के मेल से जो विकार होता है, वह संधि कहलाता है । व्याकरण में संधि शब्द का प्रयोग एक तरह से वर्ण-विकार के अर्थ में किया जाता है। यह विकार वर्णों के मेल से ही होता है। जब दो शब्द पास-पास आते हैं तब हम उच्चारण की सुविधा के लिए उन दोनों को पृथक-पृथक उच्चारित न करके उन्हें मिला देते हैं। इस प्रकार एक नया शब्द बन जाता है। शब्द के इस नए रूप के निर्माण में पहले शब्द के अंतिम अक्षर और दूसरे शब्द के पहले अक्षर का मेल होता है । सामान्यतः अक्षरों की इसी मिलावट को संधि कहा जाता है। कामताप्रसाद गुरु अपने 'हिंदी व्याकरण' पुस्तक में संधि के बारे में बताते हैं- "दो निर्दिष्ट अक्षरों के पास-पास आने के कारण उनके मेल से जो विकार होता है, उसे संधि कहते हैं। संधि और संयोग में यह अंतर है कि संयोग अक्षर जैसे के तैसे रहते हैं, परंतु संधि में उच्चारण के नियमानुसार दो अक्षरों के मेल में उनकी जगह कोई भिन्न अक्षर हो जाता है।"[1]

हिंदी व्याकरण में संधि के तीन रूप माने गए हैं – स्वर संधि, व्यंजन संधि, विसर्ग संधि

जबकि स्वर संधि के छह भेद हैं- दीर्घ संधि, गुण संधि, वृद्धि संधि, यण संधि, अयादि संधि ।

उपसंहार में संधि के योग से बने कुछ शब्द निम्न हैं-

---

[1] व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु, पृष्ठ-37

दीर्घ संधि- ह्रस्व या दीर्घ अ,इ,उ के बाद क्रमशः अ,इ,उ आये तो दोनों मिलकर दीर्घ आ,ई,ऊ हो जाता है। जैसे-

- सूर्यास्त- सूर्य+अस्त (पृष्ठ-13),
- हिमालय- हिम+आलय (पृष्ठ-34),
- वर्णाश्रम- वर्ण+आश्रम (पृष्ठ-67),
- दर्भासन- दर्भ+आसन (पृष्ठ-100),
- धर्माचरण- धर्म+आचरण (पृष्ठ-104)

गुण संधि- यदि अ और आ के बाद इ या ई,उ या ऊ, ऋ स्वर आये तो दोनों मिलकर क्रमशः ए,ओ,अर् हो जाता है। जैसे-

- सूर्योपसना- सूर्य+उपासना (पृष्ठ-105),
- सूर्योदय- सूर्य+उदय (पृष्ठ-09),
- विजयोल्लास- विजय+उल्लास (पृष्ठ-98)

विसर्ग संधि – विसर्ग के बाद स्वर या व्यंजन आने पर विसर्ग में जो विकार होता है उसे विसर्ग संधि कहते हैं। जैसे-

- तपोवन- तपः+वन (पृष्ठ-101),
- दुष्परिणाम- दुः+परिणाम (पृष्ठ-102),
- मनोरंजन- मनः+रंजन (पृष्ठ-117),आदि

3.2 मिथकीय शब्द

पौराणिक एवं मिथकीय उपन्यास होने के कारण 'उपसंहार' उपन्यास की भाषा में मिथकीय शब्दों का प्रयोग किया गया है। शब्द की व्याख्या के 'भारतीय मिथक कोश'[1] में प्रयुक्त व्याख्या के साथ वर्णन करते हुये 'उपसंहार' में प्रयुक्त अर्थ को लेकर विवेचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। 'उपसंहार' में प्रयुक्त मिथकीय शब्द निम्न प्रकार है-

- **अर्जुन**

भारतीय मिथक और प्राचीन ग्रंथों में अर्जुन कुंती के दूसरे पुत्र का नाम था। उसके जन्म के दूसरे दिन यह आकाशवाणी हुई थी कि वह इंद्र के समान पराक्रमी होगा तथा अपने सब शत्रुओं को परास्त कर देगा। वह लक्ष्मी, इंद्र के शौर्य तथा विष्णु के बल से सम्पन्न होगा। वह द्रोणाचार्य का सबसे प्रिय शिष्य था।

विवेचन- 'उपसंहार' में काशीनाथ ने इन्हीं अर्जुन का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। अर्जुन इन्द्र के समान ही पराक्रमी थे। कृष्ण अर्जुन का युद्ध में मार्गदर्शन करते हैं और युद्ध के लिए उसे बार बार प्रेरित करते हैं।

- **इंद्र**

भारतीय मिथकों में इन्द्र के बारें काफी विस्तार से चर्चा की गई है। सामान्यतया देवताओं का राजा इंद्र कहलाता था। उसे मेषवृषण भी कहते हैं। राम-रावण युद्ध देखकर किन्नरों ने कहा कि यह युद्ध सामान्य नहीं है क्योंकि रावण के पास तो रथ है और राम पैदल हैं। अत: इंद्र ने अपना रथ राम के लिए भेजा, जिसमें इंद्र का कवच, बड़ा धनुष, बाण तथा शक्ति भी थे। विनीत भाव से हाथ जोड़कर मातलि ने रामचंद्र से कहा कि वे रथादि वस्तुओं को ग्रहण करें।

---

[1] भारतीय मिथक कोश, उषा विद्यावचस्पति

विवेचन- विवेच्य उपन्यास ‘उपसंहार’ में जिस कवच का वर्णन किया गया है। उसी कवच का वर्णन हमें मिथकों में भी सुनने को मिलता है । कौरवों-पडावों के युद्ध शुरू होने से पहले ही किस तरह इंद्र छलपूर्वक कर्ण से उसका कवच वापस ले लेते हैं। जिसका बहुत ही सुंदर चित्रण काशीनाथ ने अपने इस उपन्यास में किया है।

- **कंस**

भारतीय मिथकों में कंस के संदर्भ में इस रूप में कथा सुनने को मिलती है। कंस उग्रसेन के पुत्र का नाम था। उसके राज्याभिषेक की शर्त रखकर जरासंघ ने अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह उससे किया था। कंस ने राजा बनते ही पिता उग्रसेन को कैद कर दिया। उग्रसेन के विश्वासपात्र मंत्री यादववंशी वसुदेव के सुझाव भी वह नहीं मानता था। कालांतर में उसने अपनी बहन देवकी का विवाह वसुदेव से कर दिया। देवकी की ‘विदा’ के समय कंस के प्रति आकाशवाणी हुई- "हे कंस ! इसी देवकी का आठवां पुत्र तुम्हारा घात करेगा।" कंस तुरंत देवकी को मार डालना चाहता था किंतु वसुदेव ने ऐसा करने से रोकते हुए उसे सुझाया कि वह देवकी के आठवें बेटे को ही मारे। कंस ने देवकी के प्रत्येक बालक को मारना प्रारंभ कर दिया। देवकी के सातवें गर्भ में बलदेव थे । यमराज ने यम संबंधी माया से उस गर्भ को देवकी के उदर से निकाल रोहिणी की कुक्षी में स्थापित कर दिया। आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण थे । कंस ने भावी बालक पर कठोर दृष्टि रखने के लिए कई मंत्री नियुक्त कर दिये। संयोगवण कृष्ण-जन्म के समय सभी लोग सो गये थे। अतः वसुदेव बालक को लेकर गोकुल पहुंचे। वहाँ से एक कन्या ले आये। कंस ने उस कन्या को भी पृथ्वी पर दे मारा। वह कंस के हाथ से छूटकर हँसती हुई आर्यभाषा में बोलती हुई वहाँ से चली गयी। इसी से उसका नाम आर्या पड़ा। श्रीकृष्ण ने कंस के अत्याचार से त्रस्त लोगों में जागृति उत्पन्न की तथा वयस्क होने पर कंस को मार डाला तथा उग्रसेन का पुनः राज्याभिषेक कर दिया।

विवेचन- कंस को मारने के लिए कृष्ण ब्रज को छोड़कर मथुरा जाते हैं। कंस को मारने के लिए कृष्ण को किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना इसका संकेत हमें काशीनाथ के इस विवेच्य उपन्यास में मिलता है।

- **कर्ण**

भारतीय मिथकों में कर्ण के बारें विस्तार से कथा कही जाती है। भारतीय मिथक कोश में कर्ण के बारें में निम्न कथा देखने को मिलती है। कौरवों-पांडवों का युद्ध जब निश्चित हो गया तो कृष्ण ने कर्ण के पास जाकर उसे पांडवों से संधि कर लेने के लिए समझाया। उसे यह भी बताया कि वह कुंती-पुत्र है। कर्ण ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। कर्ण ने कृष्ण से कहा कि वह सूत-पुत्र नहीं है।

विवेचन- काशीनाथ ने भी इसी प्रसंग को आधार बनाकर कृष्ण और कर्ण के संवाद का वर्णन किया है। कृष्ण कर्ण को कौरवों की ओर से लड़ने से रोकने का प्रयास करते हैं। लेकिन कर्ण के मना देने के कारण वह इसमें सफल नहीं हो पाते हैं।

- **कुरुक्षेत्र**

कुरुक्षेत्र कुरु ने जिस क्षेत्र को बार-बार जोता था, उसका नाम कुरुक्षेत्र पड़ा। कहते हैं कि जब कुरु बहुत मनोयोग से इस क्षेत्र की जुताई कर रहे थे तब इंद्र ने उनसे जाकर इस परिश्रम का कारण पूछा। कुरु ने कहा- "जो भी व्यक्ति यहां मारा जायेगा, वह पुण्य लोक में जायेगा ।" इंद्र उनका परिहास करते हुए स्वर्गलोक चले गये । ऐसा अनेक बार हुआ। इंद्र ने देवताओं को भी बतलाया । देवताओं ने इंद्र से कहा- "यदि संभव हो तो कुरु को अपने अनुकूल कर लो अन्यथा यदि लोग वहाँ यज्ञ करके हमारा भाग दिये बिना स्वर्गलोक चले गये तो हमारा भाग नष्ट हो जायेगा ।" तब इंद्र ने पुनः कुरु के पास जाकर कहा– "नरेश्वर, तुम व्यर्थ ही कष्ट कर रहे हो। यदि कोई भी पशु, पक्षी या मनुष्य निराहार रहकर अथवा युद्ध करके यहां मारा जायेगा तो स्वर्ग का भागी होगा ।" कुरु ने यह बात मान ली। यही स्थान समंत पंचक अथवा प्रजापति की उत्तरवेदी कहलाता है।

विवेचन- विवेच्य उपन्यास में जिस कुरुक्षेत्र के वर्णन मिलता है। वह यही मैदान है जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, जहाँ महाभारत का युद्ध लड़ा गया।

- **कृष्ण**

भारतीय संस्कृति में कृष्ण की कथा इस रूप में प्रचलित है। श्रीकृष्ण के रूप में वही अव्यक्त नारायण व्यक्त रूप धारण करके अवतरित हुए। वे वसुदेव के पुत्र हुए। कंस के भय से वसुदेव उन्हें नंद गोप के यहां छोड़ आये। वहीं पलकर वे बड़े हुए। यशोदा (नंद की पत्नी) से उन्हें अद्भुत वात्सल्य की उपलब्धि हुई। शिशुरूप में वे एक बार छकड़े के नीचे सो रहे थे। यशोदा उन्हें वहाँ छोड़ यमुना तट गयी थी। बाल लीला का प्रदर्शन करते हुए रोते हुए कृष्ण ने अपने पांव के अंगूठे से छकड़े को धक्का दिया तो वह उलट गया। उस पर रखे समस्त मटके टूट गये। देवताओं के देखते-देखते उन्होंने पूतना को मार डाला। वे अपने बड़े भाई संकर्षण के साथ खेलते-कूदते बड़े हुए। सात वर्ष की अवस्था में गोचारण के लिए जाया करते थे। एक बार मक्खन चुराकर खाने के दंडस्वरूप मां (यशोदा) ने उन्हें ऊखल में बांध दिया। कृष्ण ने उस ऊखल को यमल तथा अर्जुन नामक दो वृक्षों के बीच में फंसाकर इतने जोर से खींचा कि वे दोनों वृक्ष उखड़ गये। इस प्रकार उन वृक्षों पर रहनेवाले दो राक्षसों को उन्होंने मार डाला। इस प्रकार अनेक बाल लीलाओं का चित्रण हमें पौराणिक कृष्ण में देखने को मिलता है।

विवेचन- इस प्रकार कृष्ण कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद अपने जीवन के अंतिम दिनों में किस प्रकार द्वारका में रहे और किस प्रकार उनकी मृत्यु एक साधारण मनुष्य के रूप हुई। यह उपन्यास कृष्ण के बाल चित्रण से आगे बढ़कर वृद्ध कृष्ण के जीवन का चित्रण विस्तार से करता है। जो सामान्य रूप से साहित्य में कम ही देखने को मिलता है।

- **दुर्वासा**

मिथक परंपरा में दुर्वासा ऋषि की चर्चा होती है। मिथक कोश के अनुसार एक बार दुर्वासा यह कहकर कि वे अत्यंत क्रोधी हैं, कौन उनका आतिथ्य करेगा? नगर में चक्कर लगा रहे थे। उनके वस्त्र फटे हुए

थे। कृष्ण ने उन्हें अतिथि-रूप में आमंत्रित किया। उन्होंने अनेक प्रकार से कृष्ण के स्वभाव की परीक्षा ली। वह कभी दस हजार लोगों के बराबर खाते, कभी कुछ भी नहीं खाते । एक दिन खीर जूठी करके उन्होंने कृष्ण को आदेश दिया कि वे अपने और रुक्मिणी के अंगों पर लेप कर लें । फिर रुक्मिणी को रथ में जोतकर चाबुक मारते हुए बाहर निकलें। थोड़ी दूर चलकर रुक्मिणी लड़खड़ाकर गिर गयी। दुर्वासा क्रोध से पागल होकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। कृष्ण ने उनके पीछे-पीछे जाकर उन्हें रोकने का प्रयास किया तो दुर्वासा प्रसन्न हो गये तथा कृष्ण को क्रोधविहीन जानकर उन्होंने कहा- "सृष्टि में जब तक चारों ओर जितना अनुराग अन्न में रहेगा, उतना ही तुममें भी रहेगा। तुम्हारी जितनी वस्तुएं मैंने तोड़ीं या जलायी हैं, सभी तुम्हें पूर्ववत् मिल जाएंगी।

विवेचन- विवेच्य उपन्यास में दुर्वासा ऋषि के प्रसंग को विस्तार से वर्णित किया गया है। जबकि इस प्रसंग का आधार यही मिथकीय घटना है। काशीनाथ जी ने दुर्वासा ऋषि द्वारा ब्रह्मणों के द्वारा होने वाले शोषण को भी दिखाने का प्रयास इस प्रसंग के माध्यम से किया है।

- **बलराम**

महाभारत युद्ध के समय बलराम कौरव और पांडव दोनों ही पक्षों से संबंधित होने के कारण किसी एक का साथ नहीं देना चाहते थे । कृष्ण का अर्जुन के प्रति विशेष झुकाव देखकर वे युद्धपर्यंत तीर्थाटन के लिए निकल गये । द्वारुवती नगरी में उन्होंने ताड़ी का रस पीया, तदुपरांत वे रेवती सहित एक अत्युत्तम लता-गृह में पहुंचे, जहाँ सूत जी पुराण की कथा बांच रहे थे । बलराम मद मस्त थे। सूत जी के अतिरिक्त शेष सभी ने उनका आदर किया। क्रोधवश उन्होंने सूत जी की हत्या कर दी। ब्रह्म हत्या के कारण बलराम को जो पाप लगा, छुटकारा उससे पाने के लिए वे तीर्थयात्रा करने 'प्रतिलोमा-सरस्वती' गए।

विवेचन- विवेच्य उपन्यास में कृष्ण और बलराम के बीच महाभारत युद्ध में द्वारका के शामिल होने को लेकर मतभेद का वर्णन किया गया है। बलराम कृष्ण से इस बात से नाराज़ रहते हैं कि उन्होंने सेना को इसमें शामिल करने का फैसला अकेले कैसे ले लिया? क्योंकि सेना राज्य की संपत्ति की सुरक्षा के लिए

होती है किसी के पारिवारिक झगड़ों में लड़ने के लिए नहीं। कृष्ण और बलराम के संवाद के कई प्रसंग हमें इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं। उनमें एक प्रसंग इस मिथकीय घटना को आधार बनाकर भी है।

- **मित्रवंदा**

भारतीय मिथक में मित्रवंदा की चर्चा इस रूप में की जाती है। अवंती देश के राजा विंद तथा अनुविंद की बहन का नाम मित्रवंदा था। उसके स्वयंवर में श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहा था, किंतु उसके भाइयों ने उसे रोक दिया था । वह कृष्ण की बुआ की लड़की थी।

विवेचन- विवेच्य उपन्यास में मित्रवंदा का कोई प्रसंग से अलग से नहीं है। किंतु इन्हीं मित्रवंदा का जिक्र कई बार होता है।

- **मुसलकाण्ड**

मिथक कोश के अनुसार मूसलकांड महाभारत युद्ध में कुरुवंश-संहार के उपरांत गांधारी ने श्रीकृष्ण के वंश को नष्ट होने का शाप दिया था । तदनुसार युद्ध के छत्तीस वर्ष उपरांत तरह-तरह के अपशकुन दिखायी देने लगे। उन्हीं दिनों विश्वामित्र, कण्व और नारद द्वारका पहुंचे। वहाँ के नटखट बालक सांब (श्रीकृष्ण का एक पुत्र) को नारी-वेश में उन मुनियों के पास ले गये । उसका परिचय बभ्रु की पत्नी के रूप में देकर उन्होंने भावी संतान के लिए आशीर्वाद मांगा । मुनियों को इस धोखे से अवमानना का अनुभव हुआ । अतः उन्होंने कहा– "इसके गर्भ से मूसल का जन्म होगा जो तुम्हारे समस्त वंश को नष्ट कर डालेगा। केवल कृष्ण और बलराम ही उससे बच पायेंगे ।" अगले दिन सांब ने एक लोहे के मूसल को जन्म दिय।। उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण करवाकर समुद्र में बहा दिया।

विवेचन- विवेच्य उपन्यास में इसी प्रसंग को आधार बनाकर एक विस्तृत वर्णन किया गया है। यही श्राप द्वारका के विनाश का आधार बनता है और इसी मूसल से उगे सरपट से सभी द्वारकावासी एक दूसरे की हत्या कर डालते हैं।

- **राधा**

भारतीय उपनिषद् राधिकोपनिषद् में राधा का चित्रण इस श्लोक में किया गया है-

कृष्णेन आराध्यत इति राधा।

कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका ।।[1]

अर्थात् श्री कृष्ण इनकी नित्य आराधना करते हैं, इसलिए इनका नाम राधा है और श्री कृष्णकी ये सदा सम्यक् रूप से आराधना करती हैं, इसलिए राधिका नाम से प्रसिद्ध हुई हैं। सामान्यतया राधा को कृष्ण की प्रेमिका के रूप में जाना जाता है।

विवेचन- विवेच्य उपन्यास में राधा का प्रसंग भी आया है। राधा कृष्ण से बचपन से प्रेम करती थी और कृष्ण भी राधा से प्रेम करते थे। कृष्ण राधा को संबोधित करते हुए कहते हैं- प्रेमयोग की मेरी प्रथम दीक्षागुरु। अर्थात् काशीनाथ जी भी इसी प्रसंग को हमारे सामने रखने का प्रयास करते हैं।

- **सुदर्शन चक्र**

मिथकों में सुदर्शन चक्र की चर्चा विस्तार से की गई है। मिथक कोश में उषा विद्यावचस्पति लिखती है कि दैत्यों के अनाचार से दुखी होकर देवता विष्णु की शरण में पहुंचे। विष्णु ने शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की । शिव ने परीक्षा के निमित्त विष्णु के पूजा के एक सहस्र कमलों में से एक उठा लिया । विष्णु को ज्ञात हुआ तो वे विशेष चिंतित हुए। फिर यह याद करके कि उनके नेत्र कमलवत् थे, उन्होंने अपना एक नेत्र पुष्पों के साथ चढ़ा दिया । प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया और कहा कि वे विषम स्थिति में ही उसका प्रयोग करें।

[1] कल्याण, नारी-अंक, 22वें वर्ष का विशेषांक

विवेचन- विवेच्य उपन्यास में कृष्ण के सुदर्शन चक्र का वर्णन है। सुदर्शन चक्र कृष्ण के ऐशवर्य का आधार भी है।

इसके अतिरिक्त काशीनाथ सिंह ने अनेक मिथकीय शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे- हस्तिनापुर, भीम, विष्णु, शिशुपाल, विश्वामित्र, उद्धव, विश्वकर्मा, सुदत्ता, भद्रा, जाम्बवती आदि। इन मिथकीय शब्दों का प्रयोग का मुख्य कारण इनसे जुड़ी कथा का संकेत करना रहा है। लघु उपन्यास होने के कारण सभी प्रसंग का चित्रण करना स्वाभाविक नहीं था । इसलिए संकेत मात्र द्वारा ही काशीनाथ जी आगे बढ़ते हैं और मुख्य कथा से अपने को अलग न करके सीधे चलते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि 'उपसंहार' उपन्यास का मुख्य आधार मिथकीय प्रसंग ही है। जो कथानक को विस्तार प्रदान करता है।

3.3 विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ

काशीनाथ सिंह ने 'उपसंहार' उपन्यास में कई बार कुछ विशेष बात कहने के उद्देश्य से उसे विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत किया है। जो इनके भाषा पर पकड़ को दर्शाता है। ऐसे ही कई प्रसंग है जिनपर हम विचार करेंगे । जैसे-

- अक-बक (पृष्ठ-11)

विवेचन- गोपाल भोज के घायल होकर द्वारका वापस लौटने पर द्वारका वासियों में युद्ध का समाचार जानने की जिज्ञासा रहती है। वैद्य के उपचार के दौरान जब बीच बीच गोपाल भोज को होश आता तो कुछ न कुछ बोलने का प्रयास करता । थोड़ी थोड़ी बातें जिस रूप में पता चली उसके लिए लेखक ने अक-बक शब्द का प्रयोग किया है । जो एक विशिष्ट अभिव्यक्ति मानी जाती है। इस तरह के शब्द प्रयोग विवेच्य उपन्यास उपसंहार की विशेषता है।

- चोटिट्न कहीं की (पृष्ठ-72)

विवेचन- राधा द्वारा कृष्ण की मुरली छिपा लेने पर कृष्ण द्वारा इस तरह के शब्द का प्रयोग राधा के लिए किया गया है। चोटिट्न का अर्थ है चोरी करने वाली । आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग होने की वजह से काशीनाथ सिंह जी ने इस प्रकार की विशेष अभिव्यक्ति का प्रयोग अर्थ सम्प्रेषण की दृष्टि से किया है। इस शब्द प्रयोग से राधा और कृष्ण के आपसी प्रेम का भी संकेत मिलता है।

- जेठ की लू हो (पृष्ठ-109)

विवेचन- काशीनाथ सिंह जी ने जेठ की गर्मी को व्यक्त करने लिए इस शब्द का प्रयोग किया है। यहां यह एक विशिष्ट अभिव्यक्ति के रूप में प्रयोग किया गया है। क्योंकि जेठ के मौसम में गर्मी अत्यधिक होती है और हवाएं भी बहुत गर्म होती है। जिससे बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है । इसी अर्थ सम्प्रेषण को ध्यान में रखते हुए लेखक ने इसका प्रयोग किया है।

- न आंखों में नींद, न दिल में चैन (पृष्ठ-27)

विवेचन- कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद कृष्ण की स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। इससे पहले द्वारका में होते थे तो सभी उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते थे। लेकिन युद्ध के बाद समुद्र भी उसके आक्रोशित नजर आता है। युद्ध के बाद कृष्ण न हो सो पाते हैं न ही किसी काम में उनका मन लगता है। हर समय उन्हें सिर्फ युद्धक्षेत्र की बातें ही याद आती हैं जो उनको विचलित कर देती हैं। काशीनाथ सिंह जी ने कृष्ण की इस मनोदशा को व्यक्त करने लिए इसका प्रयोग किया है। जो एक विशिष्ट अभिव्यक्ति ले अंतर्गत आता है।

- मनुष्य का मनुष्य होना (पृष्ठ-66)

विवेचन- कृष्ण वर्ण व्यवस्था से दुखी होकर कहते हैं क्यों मनुष्यों को जाति के भेद में बांटा गया । मनुष्य का मनुष्य होना ही पर्याप्त नहीं है? काशीनाथ सिंह जी कृष्ण के माध्यम से वर्तमान की समस्या को उठाते हैं और सवाल करते हैं। मनुष्य का मनुष्य होना ही पर्याप्त है उसे जाति में बांटकर भेद पैदा

करना उचित नहीं है। अतः लेखक ने विशिष्ट अभिव्यक्ति के द्वारा वर्तमान समस्या की तरफ संकेत किया है और मनुष्य के लिए मनुष्य होना ही पर्याप्त बताया है।

- "जैसे कर्म में ही फल छिपा रहता है, वैसे ही जीवन में भी मृत्यु छिपी रहती है।"[1]

विवेचन- कृष्ण दारुक को कर्म के फल और मृत्यु के बारे में बताते हैं और कहते हैं कि कर्म में ही फल छिपा रहता है मनुष्य जो कर्म करता है वही वापस उसे फल के रूप प्राप्त होता है। जिस तरह कर्म में फल होता है वैसे ही जीवन में मृत्यु होती है। मृत्यु निश्चित नहीं है कब,कहाँ,कैसे आ जाये कोई अनुमान नहीं कर सकता है।

उपरोक्त के आधार पर देखते हैं कि विशिष्ट अभिव्यक्तियों के माध्यम से काशीनाथ सिंह ने कृष्ण के दार्शनिक रूप से हमारा परिचय कराया है। साथ ही वर्तमान समस्या का संकेत भी इसी माध्यम से किया है। यह लेखक की एक विशिष्ट उपलब्धि है कि अर्थ सम्प्रेषण के वह भिन्न भिन्न शैली अपनाते हैं। जिसमें वह पूरी तरह से सफल भी होते हैं।

3.4 शब्दशक्ति

जिन शब्दों में अर्थ बोध कराने की शक्ति होती है ऐसे शब्दों को शब्द शक्ति कहा जाता है। वाक्य में प्रयुक्त किसी शब्द के अर्थ का बोध प्रसंग या वाक्य में प्रयुक्त अन्य शब्दों के साथ सम्बन्ध से होता है इसीलिए शब्द व अर्थ के सम्बन्ध को शब्द-शक्ति कहते हैं।

सामान्य रूप से शब्द शक्ति के तीन रूप माने जाते हैं- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना

3.4.1 अभिधा - प्रसिद्ध अर्थ अथवा साक्षात् संकेतित अर्थ के बोधक व्यापार को अभिधा शब्दशक्ति कहते हैं।

[1] उपसंहार, पृष्ठ-108

वाचक शब्द - जो मुख्य अर्थ अथवा साक्षात् संकेतित अर्थ का बोध कराता है वाचक शब्द कहलाता है। अथवा जिस शब्द का अर्थ अभिधा शक्ति द्वारा ज्ञात होता है। उसे वाचक अथवा संकेतित शब्द भी कहते हैं। इन शब्दों से अर्थ सरलता से समझ आ जाता है।

वाच्यार्थ- किसी शब्द का अभिधा शब्द शक्ति द्वारा ज्ञात अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है। वाच्यार्थ से तात्पर्य है किसी शब्द का निश्चय अथवा साक्षात् संकेतित अर्थ।

"तत्र संकेतितार्थस्य बोधनाद्डग्रिमा अभिधा।"[1]

विवेच्य उपन्यास उपसंहार में प्रयुक्त अभिधा के कुछ उदाहरण निम्न हैं-

- "..उनसे कौन कहे कि जो अब तक नहीं आए, वे अब कभी नहीं आएँगे !"[2]

विवेचन- यहां वे का अर्थ साक्षात संकेत द्वारा प्राप्त हो जाता है वे का अर्थ है द्वारका के वे जन जो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए हैं और वे अब कभी नहीं आएंगे।

- "बातें कहते-सुनते कब भोर हो गई, पता ही नहीं चला। पूरब के आसमान में लाली दिखाई देने लगी थी। चिड़ियों के कलरव सुनाई पड़ने लगे थे। परिसर में मोर और हिरन घूमने लगे थे। हवा में खुनक थी और हल्की ठंड महसूस हो रही थी।"[3]

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने इस वाक्य का प्रयोग यहां सूर्योदय का संकेत करने के लिए किया है। आसमान में लाली दिखाई पड़ने का सीधा सा अर्थ है कि सुबह हो गयी है और सूर्य निकल आया है।

3.4.2 लक्षणा शब्द शक्ति- मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ लक्षित हो उसे लक्षणा शब्द शक्ति कहते हैं।

---

[1] भारतीय काव्यशास्त्र, सत्यादेव चौधरी, पृष्ठ-51

[2] उपसंहार, पृष्ठ-28

[3] वही, पृष्ठ-65

"मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो यमाडन्योऽर्थः प्रतीयते रूढ़े: प्रयोजनाद वासौ लक्षणाशक्तिर्पिता ।"[1]

लक्षक शब्द - जो शब्द लक्षणा शक्ति द्वारा लक्ष्यार्थ का घोतन करता है उसे लक्षक अथवा लाक्षणिक शब्द कहते हैं।

लक्ष्यार्थ- लक्षणा शाक्त द्वारा गृहीत अर्थ लक्ष्यार्थ कहलाता है।

लक्षणा के दो प्रमुख भेद हैं- रूढ़ा लक्षणा, प्रयोजनवती लक्षणा

रूढ़ा लक्षणा - जहाँ मुख्यार्थ रूढ़ि के कारण लक्ष्यार्थ का बोध कराएँ वहाँ रूढ़ा लक्षणा मानी जाती है । रूढ़ा लक्षणा के अन्तर्गत सभी भाषाओं के मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ आ जाती हैं। जैसे- दांत खट्ट्रे करना।

प्रयोजनवती लक्षणा - जहाँ मुख्यार्थ किसी प्रयोजन के कारण लक्ष्यार्थ बोध कराए, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा मानी जाती है ।

उपसंहार में प्रयुक्त लक्षणा शब्द शक्ति के उदाहरण इस प्रकार हैं-

- "आज पूनम की रात थी
  संगमरमर का महल दूध में नहाया हुआ लग रहा था और पीछे समुद्र जाने किस खुशी में बेतहाशा उछल रहा था।"[2]

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने द्वारका के महल की सुंदरता को बताने के लिए लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग किया है। दूध में नहाये का अर्थ है कि महल संगमरमर के कारण सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करके उसे सफेद दूधिया रंग में रंग दिया है और समुद्र के खुशी में उछलने का अर्थ है कि उसमें ऊँची ऊँची लहरें आ रही हैं। जिसके लिए काशीनाथ सिंह ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है।

---

[1] हिंदी रूप रचना, सं. जयेन्द्र त्रिवेदी, पृष्ठ-187

[2] उपसंहार, पृष्ठ-33

- "पहली बार द्वारकावासियों ने कृष्ण और बलराम के बीच मतभेद देखे। जर्जर महाराज वसुदेव परेशान।"[1]

विवेचन- काशीनाथ सिंह जी ने जर्जर शब्द का प्रयोग कृष्ण की कमजोरी को बताने के किया है। यहां जर्जर शब्द द्वारा कृष्ण के बुढ़ापे का भी संकेत करते हैं।

- "लेकिन 'महाभारत' में जो मारे गए वे तो आर्यावर्त के गौरव थे उनमें ऐसे-ऐसे महारथी थे जो अपने तीर की नोंक पर पृथ्वी या तारामंडल को कदम्ब के फूल की तरह उठाकर नचा सकते थे।"[2]

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने द्वारका के योद्धाओं की वीरता का परिचय कराने के लिए लक्षणा के माध्यम से उनकी ताकत को बताने का प्रयास किया है। ऐसे ही योद्धा कौरवों के भी थे जो एक से एक महारथी थे। महाभारत का युद्ध इन योद्धाओं के विनाश का कारण बना। जो किसी प्रकार से भी उचित नहीं था।

- "क्योंकि राजा अन्धा था, बेटा-जो भावी नरेश होने का सपना पाले वा-बहरा था और मंत्रिपरिषद् गूँगी थी, क्योंकि उसके पास जीभ थी तो खड्ग और गदा की।"[3]

विवेचन- कृष्ण धृतराष्ट्र, दुर्योधन और अन्य लोगों के व्यक्तित्व को लक्षण करके कौरवों के राज्य के बारें में बताते हैं कि ये युद्ध क्यों जरूरी था। कौरवों की मंत्रिपरिषद को बात करने, आचरण करने का तरीका नहीं पता था। वे सब सिर्फ लड़ना जानते थे। यही कारण था कि महाभारत का युद्ध रोका नहीं जा सका।

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-35

[2] वही, पृष्ठ- 35

[3] वही, पृष्ठ-52

- "जब भी कहीं से सुगन्ध आती है, मुझे कुरुक्षेत्र की याद आ जाती है और यह आज से नहीं, तभी से है, जब से लौटा हूँ।"[1]

विवेचन- सुगंध और कुरुक्षेत्र का तात्पर्य यहाँ वहाँ के शवों और रक्त से है जो कुरुक्षेत्र में चारों ओर फैली थी वही दुर्गंध उनके भीतर बैठ गयी है। इसलिये जब भी उन्हें कोई सुगंध आती है तो कुरुक्षेत्र की याद आने लगती है।

- "रात भर दहाड़ने के बाद थककर समुद्र अब हाँफ रहा था और उसकी लंबी लंबी सांसें वाटिका तक सुनाई पड़ रही थी।"[2]

विवेचन- रातभर समुद्र में काफी तेज लहरें उठ रही थी और बहुत आवाज हो रही थी। किंतु अभी लहरें शांत पड़ गयी है तो ऐसा लगता है जैसे हाँफ रहा हो।

- "मुसकराते हुए कहा- 'कान्हा, मुझे क्या पता कि तुम इतने बड़े शिकारी हो? इतने ही दिन में दो सिंह मारे, तीन चीते मार डाले, दो बाघ भी, लेकिन ये हिरन? इन विचारों को नहीं मारना चाहिए था इनकी आँखें देखो जरा कितनी सहमी हुई? दया की भीख माँगती हुई ? देखो..."[3]

विवेचन- यहां हिरण जानवर का प्रतीक न होकर निर्दोष लोगों का प्रतीक है । जो युद्ध में बेवजह मारे गये। बलशाली को बल से मारने में कोई दोष नहीं है लेकिन निर्दोष और कमजोर लोगों को ताकत से मारने में अन्याय करने जैसा है।

- "प्रेमयोग की मेरी प्रथम दीक्षागुरु ।"[4]

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-53

[2] वही, पृष्ठ-62

[3] वही, पृष्ठ-74

[4] वही, पृष्ठ- 76

विवेचन- प्रथम दीक्षागुरु का प्रयोग यहां लक्षण के आधार पर किया गया है। कृष्ण अपने जीवन में राधा के महत्त्व को बताते हैं। राधा ही वह पहली स्त्री थी जिससे कृष्ण ने प्रेम किया और प्रेम क्या होता इसको समझा।

- "कृष्ण उद्विग्न थे।
  समुद्र में गिरे हुए ताड़ों-खजूरों को देखकर उद्विग्न थे कृष्ण
  उनकी आँखें बन्द थीं, लेकिन वे देख रहे थे चौतरफा समुद्र के बीच कई मंजिलों वाले
  विशाल जहाज जैसी द्वारका
  और उसकी सबसे ऊँची पहाड़ी पर बना उनका महल जैसे मस्तूल
  द्वारका नाच रही है चकरघिन्नी की तरह"[1]

विवेचन- द्वारका नाच रही थी से तात्पर्य है कि द्वारका के लोग नाच रहे हैं अर्थात द्वारका के लोगों को ये समझ नहीं आ रहा है कि क्या और कैसे करने है। द्वारका की स्थिति ऐसी हो गयी है कि सब दिशाहीन हो गए हैं।

3.4.3 व्यंजना शब्द शक्ति- अभिधा और लक्षणा द्वारा अपना अपना अर्थ बताकर शांत हो जाने पर जिसके द्वारा अन्य अर्थ का बोधन होता है उसे व्यंजना शब्दशक्ति कहते हैं।

व्यंजक शब्द - जिस शब्द से व्यंजना शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंजक शब्द कहते हैं।

व्यंग्यार्थ- व्यंजना शक्ति द्वारा प्रतीत अर्थ व्यंग्यार्थ कहलाता है। आदि भी कहते हैं। इसे प्रतीय, मानार्थ, ध्वन्यर्थ आदि भी कहते हैं।

"विरतास्वभिघाघासु ययार्थी बोयते परः

[1] उपसंहार, पृष्ठ-79

सा वृत्तिव्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ॥"[1]

इसके दो भेद होते हैं- शाब्दी व्यंजना, आर्थी व्यंजना।

उपसंहार में प्रयुक्त व्यंजना शब्दशक्ति के उद्धरण इस प्रकार हैं-

- "...थोड़े ही दिनों में हम एक बन्द मुट्ठी की तरह पाए गए
  बँधी हुई, कसी हुई, तनी हुई।"[2]

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने द्वारका की एकता को बताने के लिए उसकी तुलना बंद मुट्ठी से की है। द्वारका के लोग बंधी हुई, कसी हुई, तनी हुई मुट्ठी की तरह आपस में संगठित है। यह अर्थी व्यंजना का उद्धरण है।

- "...कि ये जिसकी दान-दक्षिणा और सेवा-सत्कार से प्रसन्न हों उसे नारायण बना दें और जिससे
  असन्तुष्ट हों
  उसे असुर और राक्षस"[3]

विवेचन- कृष्ण द्वारका के ब्राह्मणों के बारें में बताते हैं कि यह जिससे खुश हो जाएं उसे नारायण बना देना का अर्थ है कि उसे सम्मान देना, उसके प्रति विनम्र रहना। वही असुर बना देने का अर्थ है कि उसकी बुराई करना, निंदा करना, सम्मान नहीं करना।

- "वे योगी हैं
  जब चाहे सो सकते हैं, जब चाहे जग सकते हैं सोए-सोए जग सकते हैं और जगे-जगे सो सकते
  हैं।"[4]

---

[1] भारतीय काव्यशास्त्र,सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ-73

[2] उपसंहार, पृष्ठ-30

[3] वही, पृष्ठ 30

[4] उपसंहार, पृष्ठ-32

विवेचन- देवताओं का विशेष गुण होता है कि वो जो चाहे वो कर सकते हैं। लेकिन काशीनाथ ने कृष्ण को यहां ईश्वर के रूप चित्रित न करके मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। इसी कारण कृष्ण को नींद नहीं आती है। अर्थात् इंद्रियों से उनका नियंत्रण समाप्त हो रहा है। जो एक सामान्य मानव की निशानी है।

- "...सुई की नोक के बराबर भी ।"[1]

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने व्यंजना शब्द शक्ति के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि पडावों के पांच गांव मांगने पर दुर्योधन ने उन्हें थोड़ी सी जमीन देने से मना कर दिया । जिस जिद्द के कारण महाभारत युद्ध लड़ना पड़ा।

- "इस बात को उनसे ज्यादा सही तरीके से कौन समझ सकता या कि मार भी वही रहे हैं और मर भी वही रहे हैं।"[2]

विवेचन- महाभारत के युद्ध में एक तरफ कृष्ण थे तो दूसरी तरफ उनकी सेना थी। एक तरफ कृष्ण युद्ध का नेतृत्व कर रहे थे तो दूसरी तरफ द्वारका की ही सेना का वध हो रहा था। इसलिए लेखक ने व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग करते हुए लिखा है कि मार भी वही रहे थे और मर भी वही रहे थे।

- "जनार्दन! आपकी देह से हर समय घोड़े की ही
  खुशबू क्यों आती है?"[3]

विवेचन- घोड़ा यहां प्रतीक है साम्राज्य विस्तार व ताकत का। यहां कृष्ण की महत्वकांक्षा को व्यंजना शब्द शक्ति द्वारा प्रकट किया गया है।

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-37

[2] वही, पृष्ठ-41

[3] वही, पृष्ठ-47

- “वे अधलेटे से उठ बैठे। पांचजन्य- जिसकी ध्वनि से धरती काँपने लगती थी. पहाड़ हिल उठते थे, समुद्र किनारा छोड़कर भाग खड़ा होता था, या तो मृत पड़ा था या उसमें इतनी प्राणशक्ति नहीं बची थी कि बज सके।”[1]

विवेचन- पांचजन्य अर्थात कृष्ण का शंख। जो सत्य और तेज़ का प्रतीक है। महाभारत युद्ध में हुये छल से यह निस्तेज हो गया है। कृष्ण की शक्ति जिस प्रकार से तेजहीन हो गयी है वैसे ही स्थिति इस पांचजन्य की हो गयी है।

उपरोक्त आधार पर कह सकते हैं कि काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास ‘उपसंहार’ में शब्द शक्तियों का भरपूर प्रयोग किया है। शब्दशक्ति के उचित प्रयोग से भाषा को समझना आसान हो जाता है। साथ ही रचना की अभिव्यक्ति क्षमता में काफी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से ‘उपसंहार’ एक सफल रचना मानी जाती है।

3.5 पर्यायवाची

काशीनाथ सिंह ने उपसंहार उपन्यास की रचना साधारण बोलचाल की भाषा मे की है। यह उपन्यास लघु होते हुए भी इसमें गागर में सागर जैसी युक्ति को चरितार्थ करती है। उपन्यास की भाषा अत्यंत सहज सरल एवं कलात्मक रूप में मिलता है। भाषा के प्रवाह को बनाएं रखने के लिए काशीनाथ सिंह जी ने जगह-जगह पर्यायवाची शब्दों को प्रयोग भी किया है जिससे भाषा का प्रवाह बना रहा है और उसकी अभिव्यक्ति को भी मजबूती मिली है।

समान अर्थ रखने वाले शब्द पर्यायवाची शब्द कहलाते हैं। पर्यायवाची शब्दों के उपयुक्त शब्द चयन के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं- “ऐसे शब्दों को चुनते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे प्रकरण-विरूद्ध या अवसर के प्रतिकूल न हों। जैसे, यदि कोई मनुष्य किसी अत्याचारी के

[1] उपसंहार, पृष्ठ-84

हाथ से छुटकारा पाना चाहता हो, तो उसके लिए हे गोपिका रमण! हे वृंदावन बिहारी! आदि कहकर कृष्ण को पुकारने की अपेक्षा हे मुरारी! हे कंस-निकंदन! आदि सम्बोधनों से पुकारना अधिक उपयुक्त है; क्योंकि श्रीकृष्ण के द्वारा कंस आदि दुष्टों का मारा जाना देखकर उसे उनसे अपनी रक्षा की आशा होती है, न कि उनका वृन्दावन में गोपियों के साथ विहार करना देखकर। इसी तरह, किसी आपत्ति से उद्धार पाने के लिए कृष्ण को मुरलीधर कहकर पुकारने की अपेक्षा गिरिधर कहना अधिक अर्थ संगत है।"[1]

विवेच्य उपन्यास उपसंहार में पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग के नमूने कुछ इस प्रकार हैं-

- वे तंग आ चुके थे **वासुदेव, केशव, पुरुषोत्तम, जनार्दन** सुनते-सुनते। (पृष्ठ-15)

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने कृष्ण के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है। कृष्ण के लिए ही ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है।

- आज उसी राजपथ पर सन्नाटा था। आवाजें आ रही थीं घरों से तो **चीखने-चिल्लाने की, रोने-विलाप करने की, छातियाँ पीटने की और हाय-हाय करने की**। (पृष्ठ-16)

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने क्रिया के प्रभाव को बढ़ाने के लिए एक ही अर्थ वाले कई शब्दों का प्रयोग किया है। जिससे दुख प्रकट करने के भाव को प्रभावी बनाया जा सके।

- जब नगर बनकर तैयार हुआ, तो उसका नाम रखा गया-**'द्वारका'** । उसके स्थापत्य, सौन्दर्य और साज-सज्जा को देखते हुए इन्द्र की 'अमरावती' के टक्कर में उसे कुछ लोग **'द्वारावती', या 'द्वारवती** भी पुकारते थे। (पृष्ठ-22)

[1] नालंदा सामान्य हिंदी, पृथ्वीनाथ पांडे, पृष्ठ-61

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने द्वारका के कई नामों की चर्चा अपने इस उपन्यास में किया है। द्वारावती, द्वारवती, द्वारका आदि नाम द्वारका के लिए प्रयोग किये गये हैं।

- ...और वे थे कि **अविचल, अविकल, निर्भय**। (पृष्ठ-29)

विवेचन- काशीनाथ ने कृष्ण के बहादुरी का वर्णन करने के लिए एक से अधिक विशेषण का प्रयोग किया है।

- जब उनके सुदर्शन मन्त्र के पाठ के साथ ही **बादलों की कर्णभेदी गड़गड़ाहट शुरू हुई, बिजली तड़तड़ाई, कौंधी और बारह आरों वाला मंडलाकार वज्रनाभ दीप्तिमान तेजयन्त्र** उनकी तर्जनी पर प्रकट हुआ। (पृष्ठ-32)

विवेचन- काशीनाथ सिंह से अर्थ का चमत्कार पैदा करने करने के लिए एक ही अर्थ वाले कई शब्दों का प्रयोग किया है। यह इनके लेखन की एक प्रमुख विशेषता है। यह जिस अर्थ पर विशेष बल देना चाहते है उसके उसके एक जैसे कई शब्दों का प्रयोग करते हैं।

- बस युधिष्ठिर शुरू हो गए **भगोड़े! डरपोक कायर! पापात्मा!** (पृष्ठ-61)

विवेचन- दुर्योधन को ललकारने के लिये युधिष्ठिर ने इस तरह के शब्दों का प्रयोग किया है। जिससे वह क्रोधित होकर युधिष्ठिर से युद्ध करने लगे।

- **यादव, ग्वाला, चरवाहा, रासरचैया, बंसीबजैया** सुनते-सुनते थक चुका था मैं। (पृष्ठ-67)

विवेचन- इन शब्दों का प्रयोग यहां कृष्ण के लिए किया गया है। कृष्ण के कर्मो के आधार पर उन्हें कई उपमानों से विभूषित किया जाता है। उसी का यह सुंदर उदाहरण है ।

- अगर वे आते हैं, **पूजा-अर्चना-अभ्यर्थना** करते हैं।

विवेचन- काशीनाथ सिंह ने प्रार्थना के लिए इस तरह शब्दों का प्रयोग किया है।

- और वे भी **<u>कृष्ण नहीं, कान्हा थे, कन्हैया थे</u>**। (पृष्ठ-71)

विवेचन- ब्रज में कृष्ण के लिए कान्हा, कन्हैया शब्दों का प्रयोग किया जाता था। जो लगाव को दर्शाता था कि ब्रजवासी कृष्ण को किस प्रेम से बुलाते थे।

- उन्हें **'पुरुषोत्तम', 'जनार्दन', 'जगदीश्वर'** जो कुछ होना है। (पृष्ठ-81)

विवेचन- कृष्ण के लिए इन पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है।

उपरोक्त के आधार पर देखते हैं कि इन शब्दों के प्रयोग से भाषा कहीं भी बोझिल या उबाऊ नहीं बनती है। रचनाकार के लेखन के कौशल की यही विशेषता होती है वह जैसे चाहे शब्दों का प्रयोग करें लेकिन उनके प्रयोग से भाषा में कहीं भी प्रवाह बाधित नहीं होना चाहिए। काशीनाथ सिंह भाषा प्रयोग के मानदंड को पूरी तरह से पूरा करते हैं। जो इसके बड़े रचनाकार होने की निशानी बताता है।

3.6 मुहावरे

कथा साहित्य के निर्माण में मुहावरों और लोकोक्तियों का विशेष महत्व होता है। जब कोई वाक्यांश अपने सामान्य अर्थ को छोड़ कर विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाता है, तो मुहावरा कहलाता है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा सजीव, प्रभावशाली एवं आकर्षक हो जाती है। इसके प्रयोग से भाषा में निखार आ जाता है। इसके प्रयोग से भाषा के लोक प्रचलित होने का पता चलता है| सामान्यत किसी बात पर विशेष बल देने के लिए मुहावरों व लोकोक्तियों का सहारा लिया जाता है। इस संदर्भ में भोलानाथ तिवारी का मत है कि- "संसार की प्रायः सभी भाषाओं में कम से कम शब्दों में अधिकाधिक सुन्दर और सशक्त अभिव्यक्ति के लिए मुहावरों का सहारा लिया जाता है।"[1]

काशीनाथ सिंह ने भी विवेच्य उपन्यास उपसंहार में भी मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग प्रर्याप्त मात्रा में किया है। उन्होंने ये मुहावरे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से लिये हैं। उमाशंकर चौधरी अपने लेख

---

[1] भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी,पृष्ठ-36

‘वाराणसी इन डाईंग, बनारस मर रहा है’ में काशीनाथ सिंह भाषा पर बात करते हुये लिखते हैं- “उनकी भाषा की जितनी तारीफ की जाए, कम है। काशीनाथ की भाषा की सबसे बड़ी खासियत है उसके रंग का गिरगिट की तरह बदलना। जिस परिवेश, जिस समस्या, जिस समय, को उठाती हुई उनकी रचना दे उनकी भाषा उसी रंग में अपने को ढाल लेती है।”[1]

काशीनाथ सिंह की असली ताकत उसके जीवंत और स्थानीय रंगतवाले भाषायी मुहावरे में है। काशीनाथ सिंह के भाषा के बारे में बात करते हुए माधव हाड़ा अपने लेख 'कुछ अलग है' में लिखते हैं- “हिंदी में ऐसे रचनाकार कम हैं जिन्होंने अपनी भाषा और खाद पानी सीधे उस समाज से लिया है, जहाँ से रचे- बसे हैं। या तो यह रेणु कर पाये हैं या अब काशीनाथ सिंह ने किया है।”[2]

पृथ्वीनाथ पांडेय अपने व्याकरण ग्रंथ ‘नालंदा सामान्य हिंदी’ में लिखते हैं- “मुहावरा उन वाक्यों अथवा वक्यांशों को कहते हैं, जो अपने शब्दों का सामान्य वाच्यार्थ न प्रकट कर, कुछ विलक्षण ही अर्थ जताते हैं।”[3] मुहावरा मूलतः अरबी भाषा का शब्द है, जिसका शब्दिक अर्थ होता है: अभ्यास करना। हिंदी में इसका प्रयोग विलक्षण अर्थ देने वाले वाक्यांश के रूप में किया जाता है। काशीनाथ सिंह ने काशी के अस्सी में भी मुहावरों का भरपूर प्रयोग किया है। जो भाषाई दृष्टि से उनका एक विशिष्ट उपन्यास है।

विवेच्य उपन्यास उपसंहार में मुहावरों का भरपूर प्रयोग है। जैसे-

- पसीने से तर-ब-तर होना- भयभीत होना (पृष्ठ-9)
- रोंगटे खड़े होना बहुत- अधिक डर जाना (पृष्ठ-11)
- दिल दहला देना- दहशत पैदा करना (पृष्ठ-11)

---

[1] अस्सी का काशी, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ-142

[2] अस्सी का काशी, काशीनाथ सिंह, पृष्ठ-242

[3] नालंदा सामान्य हिंदी, पृथ्वी नाथ पांडे, पृष्ठ-244

- धू धू करके जलना- आग का बहुत तेजी से जलना (पृष्ठ-12)
- ईश्वर के भरोसे छोड़ना- ज़िम्मेदारी से भागना (पृष्ठ-12)
- तिल रखने की जगह न होना- बहुत अधिक भीड़ होना (पृष्ठ-13)
- चल बसना- स्वर्ग सिधारना (पृष्ठ-13)
- पाँव पखारना- आदार सत्कार करना (पृष्ठ-14)
- अनदेखा करना- जान बूझकर ध्यान न देना (पृष्ठ-14)
- विलाप करना- दुख प्रकट करना (पृष्ठ-16)
- जय जयकार करना- प्रशंसा करना (पृष्ठ-16)
- छातियाँ पीटना- मातम मनाना (पृष्ठ-16)
- आकाश चूमना- ऊँची उपलब्धि प्राप्त करना (पृष्ठ-17)
- जंच जाना- पसंद आना (पृष्ठ-20)
- जायजा लेना- पड़ताल करना (पृष्ठ-20)
- लज्जित होना- शर्मिंदा होना (पृष्ठ-21)
- रच बस जाना- पसंद आना (पृष्ठ-23)
- निकम्मा होना- जो किसी काम का न हो (पृष्ठ-24)
- थककर चूर चूर होना- बहुत थक जाना (पृष्ठ-24)
- न आंखों में नींद न दिल में चैन- बेचैन रहना (पृष्ठ-27)
- सिर को धड़ से अलग करना- मार देना (पृष्ठ-32)
- षड्यंत्र रचना- साजिश करना (पृष्ठ-36)

- मारकाट करना- लड़ाई करना (पृष्ठ-38)
- सिद्धांत गढ़ना- बहाने बनाना (पृष्ठ-38)
- आँखें लाल करना- क्रोध की नजर से देखना (पृष्ठ-39)
- पलक झपकते- थोडे समय में (पृष्ठ-28)
- व्यूह रचना करना- युद्ध की रणनीति बनाना (पृष्ठ-28)
- सेवा सत्कार करना- स्वागत करना (पृष्ठ-30)
- लाठी तान देना- झगडे के लिए तैयार रहना (पृष्ठ-31)
- अपने ऐंठ में रहना- घमण्ड में रहना (पृष्ठ-31)
- चिनगारी उगलना- कड़वी बात करना (पृष्ठ-46)
- आकाश छूना- बहुत ऊँचा होना (पृष्ठ-46)
- आंखें भर आना- आँसू आना (पृष्ठ-47)
- थर थर कांपना- भयभीत होना (पृष्ठ-46)
- कान खड़े करना- होशियार होना (पृष्ठ-48)
- पाँव पखारना- स्वागत करना (पृष्ठ-49)
- धैर्य धारण करना- जल्दबाजी न करना (पृष्ठ-51)
- मुँह दिखाने लायक न होना- अपमानित होना (पृष्ठ-59)
- गप्पे मारना- व्यर्थ की बातें करना (पृष्ठ-60)
- मूर्च्छा आ जाना- बेहोश होना (पृष्ठ-62)
- आँखें डबडवा आना- आँसू आना (पृष्ठ-71)

- अधर में छोड़कर न जाना- बीच में छोड़ना (पृष्ठ-72)
- खून के प्यासे- किसी को मार डालने के लिए तैयार रहना (पृष्ठ-76)
- आँखो में बसाना- अत्यंत होना (पृष्ठ-76)
- बू आना- संदेह होना (पृष्ठ-78)
- उल्लू बनाना- मूर्ख बनाना (पृष्ठ-99)
- आंखें लाल होना- क्रोध की नज़र से देखना (पृष्ठ-100)
- सलाह मशवरा- परामर्श करना (पृष्ठ-100)
- गुमान होना- गर्व होना (पृष्ठ-101)
- फफक पड़ना- रोने लगना (पृष्ठ-101)
- सिर पर हाथ फेरना- दिलासा देना (पृष्ठ-101)
- पीठ पथपाना- शबासी देना (पृष्ठ-102)
- कान नहीं देना- ध्यान नहीं देना (पृष्ठ-108)
- ताक पर रखना- बेकार समझ कर अलग करना (पृष्ठ-113), आदि।

अंत मे हम यह कह सकते हैं कि काशीनाथ सिंह ने भाषा के बोलचाल होने का प्रमाण इन महावरों के प्रयोग द्वारा देने का प्रयास किया है। मुहावरें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से उठाएं गए हैं। सामान्य बोल चाल की भाषा में या रोजमर्रा के जीवन में जिस तरह के महावरें का प्रयोग सामान्यतया किया जाता है लेखक काशीनाथ जी ने भी ऐसे ही प्रयोग करने की कोशिश की है। जिसमें वह पूरी तरह से सफल होते दिखाई देते हैं।

3.7 वाक्य के स्तर पर

वाक्य की व्युत्पत्ति वाक् धातु से माना जाता है। जिसका अर्थ बोलना होता है। वाक्य का अर्थ है वह जो बोला जाए। भारतीय आचार्यों ने पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द समूह को वाक्य कहा है। अर्थात् सार्थक शब्दों का व्यवस्थित समूह जिससे अपेक्षित अर्थ प्रकट हो, वाक्य कहलाता है।

ब्लूमफील्ड ने वाक्य को परिभाषित करते हुये कहा है- "वाक्य एक पूर्ण उक्ति है।"[1] वाक्य के संदर्भ में आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा विचार करते हुये कहते हैं- "वाक्य पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक तत्व है। उसमें पदों का प्रयोग भाव या विचार के अनुसार होता है।"[2]

वाक्य को भाषा की महत्वपूर्ण ईकाई माना जाता है। भाषा के संप्रेषण का पूरा दायित्व वाक्य पर होता है। इसलिए किसी रचना में वाक्य की रचना किस प्रकार है। उससे उस रचना के अर्थ संप्रेषण का अंदाजा लगाया जा सकता है। वहीं विवेच्य उपन्यास उपसंहार में काशीनाथ सिंह जी ने वाक्य के तीनों भेदों (रचना के आधार पर) का प्रयोग अपेक्षित अर्थ प्राप्ति के लिए किया है। रचना की बनावट के आधार पर तीन भेद इस प्रकार हैं-

1- सरल वाक्य

2- संयुक्त वाक्य

3- मिश्र वाक्य

1- सरल वाक्य - जिन वाक्यों में केवल एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय होता है, उन्हें सरल वाक्य या साधारण वाक्य कहते हैं। सरल वाक्य में एक ही समापिका क्रिया होती है। डॉ. सूरजभान सिंह के अनुसार- "सरल वाक्य में उपवाक्य अकेला होता है और साथ ही स्वतन्त्र उपवाक्य होता है।"[3]

---

[1] भाषा विज्ञान, जीतराम पाठक, पृष्ठ-270

[2] वही, पृष्ठ-271

[3] वही, पृष्ठ-279

विवेच्य उपन्यास उपसंहार में काशीनाथ सिंह जी के द्वारा सरल वाक्यों का प्रयोग निम्न हैं-

- सभा में सबके चेहरे पर तनाव था। सब गंभीर थे। कोई किसी नहीं बोल रहा था। (पृष्ठ-36)
- सुधर्मा में हंगामा छिड़ा हुआ था। हर आदमी -चीख- चिल्ला रहा था। सब बोलना चाहते थे। कोई किसी की सुन नहीं रहा था। (पृष्ठ-39)
- विकट और भयानक युद्ध था वह उनकी चीत्कारों और गदा की टक्करों से आकाश घरा रहा था। (पृष्ठ-61)
- पूरब के आसमान में लाली दिखाई देने लगी थी। चिड़ियों के कलरव सुनाई पड़ने लगे थे। परिसर में मोर और हिरन घूमने लगे थे। (पृष्ठ-65)
- कृष्ण हडबड़ाकर उठ खड़े हुए। अपनी पीली रेशमी खोती और नीला दुपट्टा किया । घुँघराले लम्बे बालो में उँगलियाँ फेरी । (पृष्ठ-73)
- राधा का पूरा बदन सिहर उठा । वह उत्तेजना में कांप रही थी और कृष्ण हॉफ रहे थे। (पृष्ठ-74)
- कृष्ण गंभीर हो गए। ये द्वारका के लिए अनहोनी घटनाएँ थी । (पृष्ठ-82)
- कृष्ण ने दुर्वासा को 'अतिथि-कक्ष' में ठहराया। महल ने का सबसे सुन्दर भव्य, सुन्दर सजीला कमरा। शीशे की खिड़कियाँ। शीशम का भव्य पलंग। मखमल के गद्दे । शानदार फर्श। (पृष्ठ-89)
- ऋषि मारे क्रोध के काँपने लगे। उनकी आँखें लाल हो गई। चेहरा तमतमा उठा। (पृष्ठ-100)
- शाम हो रही थी। चिड़ियों की चहचह बढ़ गई थी। वे अपने घोसलों में लौट रही थी। (पृष्ठ-124)

2. संयुक्त वाक्य- एकाधिक उपवाक्यों के संयोग से गठित वाक्य संयुक्त वाक्य कहलाते हैं। संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक स्वतन्त्र उपवाक्य होते हैं।

विवेच्य उपन्यास में उपसंहार में भी संयुक्त वाक्यों का प्रयोग भरपूर देखने को मिलता है। जिसके कुछ प्रयोग निम्न हैं-

- सूर्यास्त हो गया था, लेकिन तट पर उजाला था। (पृष्ठ-47)
- महाभारत खत्म हुये कई साल हो गए, लेकिन हर किसी को ऐसा लगता था,जैसे कल की ही बात हो। (पृष्ठ-53)
- रातभर दहाड़ने के बाद थककर समुद्र अब हाँफ रहा था और उसकी लम्बी-लम्बी साँसे वाटिका तक सुनाई पड़ रही थी। (पृष्ठ-65)
- गान्धारी कहते-कहते रोने लगी और सहसा जैसे उनकी आँखे क्रोध से जल उठी। (पृष्ठ-114)
- कृष्ण पोत की छत पर खड़े हो गए और उन्होंने दोनों हाथ उठाकर सबको शांत किया। (पृष्ठ-116)
- कृष्ण दौड़कर वहाँ पहुँचे और कुछ समझे इससे पहले ही उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। (पृष्ठ-120)
- वे ध्यान करने के लिए कुछ देर तक बैठे रहे, लेकिन कर नहीं सके। (पृष्ठ-124)
- कृष्ण उसे देखते ही रहे और उसके चेहरे में स्वयं को ढूंढते रहे। (पृष्ठ-125)
- कृष्ण का कष्ट जरा से छिपा नहीं रहा। उनकी देह अकड़ती जा रही थी। आँखें खोलना चाहते थे, लेकिन खोल नहीं पा रहे थे। (पृष्ठ-126)

3- मिश्र वाक्य- मिश्रित और गम्भीर विचारों को व्यक्त करने के लिए मिश्र वाक्यों की संरचना की जाती है। जिन वाक्यों में एक प्रधान उपवाक्य हो और अन्य आश्रित उपवाक्य हो, उन्हें मिश्रित वाक्य कहा जाता है। डा. सूरजभान सिंह के अनुसार- "जहाँ दोनों में से एक स्वतंत्र और आश्रित उपवाक्यों और दूसरा आश्रित उपवाक्य होगा, वहाँ मिश्र वाक्य होगा।"[1] विवेच्य उपन्यास उपसंहार में काशीनाथ

---

[1] भाषा विज्ञान, जीतराम पाठक, पृष्ठ-279

सिंह ने संप्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए पर्याप्त मिश्र वाक्यों का प्रयोग किया है। जिसके कुछ प्रयोग निम्न हैं-

- कृष्ण की नजर उस घाड़े पर गई, जिसका नाम 'बहादुर' था। (पृष्ठ-15)
- कृष्ण मुसकराते हुए सिर नीचा किए वैसे ही खड़े रहे। (पृष्ठ-39)
- कृष्ण का ध्यान सहसा गरुड़द्वार की ओर गया, जहाँ बलराम द्वारपालों से बातें कर रहे थे। (पृष्ठ-55)
- आपसे निवेदन है कि हमें मुँह दिखाने लायक रहने दीजिए। (पृष्ठ-59)
- अतिथिशाला के मध्य में विशाल सभागार था,जिसके चारो ओर भव्य सुसज्जित कमरे! सुनहले पायों वाले चन्दनी पलंग। सबमें कालीन। (पृष्ठ-72)
- कृष्ण का द्वारपालों को आदेश था कि नन्दगाँव और बरसाने के किसी भी आदमी को रोका न जाए। (पृष्ठ-73)
- राधा ने फूलों की टोकरी उलटकर धीरे-धीरे फूल उसी तरह गिराने शुरू शुरू किए, जैसे वह गगरे का पानी हो। (पृष्ठ-74)
- कृष्ण हर रावटी में चक्कर मारकर देख चुके थे कि किसी को कोई समस्या तो नहीं है? (पृष्ठ-117)
- वे सीधे बढ़े चले जा रहे थे कि कहीं से ठंडी हवा का झोंका आया। (पृष्ठ-123)
- वे विचारों में खोए ही थे कि उन्हें कहीं दूर से आता हुआ एक स्वर सुनाई पड़ा। (पृष्ठ-115)

काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास में वाक्यों का प्रयोग अत्यंत सहज सरल एवं कलात्मक रूप में किया है। इन वाक्यों के माध्यम से हम देखते हैं कि इनकी भाषा में क्लिष्टता एवं दुरूहता का अभाव है। सामाजिक परिवेश की बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उपन्यासकार

के भाषा कौशल के संदर्भ में सूरज पालीवाल का कथन है- "यह भाषा जो बोलती भाषा है जो सामने वाले सुदूर पाठक से संवाद करती-सी भाषा है और वह भाषा तो नदी की तरह उछल-कूद करती, किनारों से टकराती अपनी मस्ती में लेकिन एक लचक से बह रही है- उस भाषा के मास्टर हैं काशीनाथ सिंह।"[1]

3.8 प्रोक्ति

भाषा का काम केवल विचारों या भावों की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है बल्कि उसके माध्यम ये कही गयी बात को श्रोता तक सम्प्रेषित करना भी है। अपनी बात को सार्थक ढंग से कहने, श्रोता द्वारा उसे ठीक से समझने फिर उसका उचित जवाब देने की प्रक्रिया में एक से अधिक वाक्य सामने आते हैं जो अर्थ और प्रसंग की दृष्टि से एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं। इस स्थिति में ही दो लोगों के बीच सम्प्रेषण सम्भव हो पाता है। सम्प्रेषण की इस इकाई को ही 'प्रोक्ति' कहा जाता है। प्रोक्ति के संदर्भ में कहा जाता है कि- "प्रोक्ति एक समाजभाषा वैज्ञानिक इकाई हैं जो संप्रेषण की दृष्टि से, संदेश की पूर्णता की दृष्टि से और आशय अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधूरी नहीं है। इस प्रोक्ति को, जब भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं तब वह एक वाक्य के ऊपर की व्याकरणिक संरचना है। जिस प्रकार रूपिम (मार्फीम) शब्दों की शब्द पदबंधों की पदबंध उपवाक्य की और उपवाक्य वाक्य की उत्तरोत्तर रचना करते हैं वैसे ही वाक्य 'प्रोक्ति' (व्याकरणिक प्रोक्ति) की रचना करते हैं। अर्थात् 'प्रोक्ति' के संरचक घटक 'वाक्य' हैं। ये संरचक वाक्य परस्पर जुड़ कर जब एक संदेश की स्वयंपूर्ण अभिव्यक्ति करते हैं, तब 'प्रोक्ति' बनती है लिखित संदेश में यह सरलता है कि लेखक प्रायः विचारों की एकात्मकता एक पैराग्राफ स्तर पर निरूपित कर देता है और इस प्रकार पैराग्राफी प्रोक्त सहजत अभिनिर्धारित व पहचानी जा सकती है। पैराग्राफ के सभी वाक्य सुसंबद्ध और सुगुम्फित होकर एक आशय को पूर्णतः व्यक्त करते हैं जो कि 'प्रोक्ति' कहे जाने की पहली शर्त है।"[2] प्रोक्ति भाषा की वह इकाई है, जो वाक्य से बड़ी होती हैं तथा जिसके कथ्य में आंतरिक

[1] कहन पत्रिका, मनीष दुबे, पृष्ठ-41

[2] हिंदी संरचना,ईकाई 13, इग्नोउ नोट्स

संभोजन तथा वाक्यों में संदर्भपरक और तर्कपूर्ण अनुक्रम रहता है । इस प्रकार रूपात्मक संसक्ति तथा अर्थ- संगति प्रोक्ति की मुख्य विशेषताएँ हैं।

प्रोक्ति शब्द प्र+उक्ति के योग से बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ प्रकृष्ट उक्ति है या विशेष उक्ति है। एक छोटी से छोटी रचना को भी प्रोक्ति माना जा सकता व बड़े से बड़े महाकाव्य को भी प्रोक्ति कहा जा सकता है। प्रोक्ति की पहचान किसी उक्ति के आकार से नहीं, बल्कि उसकी संदर्भ पूर्णता से है। इस तरह हम कह सकते हैं कि अर्थ प्रदान करने वाली कोई भी उक्ति प्राक्ति के अंतर्गत समाहित हो सकती है। जो वक्ता और श्रोता के बीच सेतु का कार्य करती है।

प्रोक्ति के मुख्यतः दो प्रकार माने जाते हैं -

1. एकालाप
2. संलाप

1- एकालाप प्रोक्ति- एकालाप में एक ही व्यक्ति (वाक्ता तथा श्रोता) दोनों की भूमिकाओं का निर्वाह करता है। एकालाप भी एक तरह का वार्तालाप होता है क्योंकि इसमें भी वक्ता और श्रोता तो होते हैं चाहे वह एक ही व्यक्ति क्यों न हो ! जब कभी कोई व्यक्ति भावावेश में अपने आप से कुछ कहने लगता है तो वह स्वयं ही वक्ता होता है और स्वयं श्रोता भी होता है।

काशीनाथ सिंह विवेच्य उपन्यास उपसंहार में कहीं कहीं एकालाप प्रोक्ति का प्रयोग भी किया है । कृष्ण इस प्रसंग के माध्यम से बताते हैं कि किस तरह से जरासंध के आतंक से भय खा कर किसी ने उनकी मदद करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने जरासंध से अपने कुलों को बचाने के लिए उनके साथ मिलकर द्वारका का निर्माण किया ताकि शांति से यहां रह सके। कृष्ण द्वारा द्वारका बसाने के कारण को स्पष्ट करते हुए काशीनाथ सिंह ने एकालाप के द्वारा स्पष्ठ करने का प्रयास किया है। जैसे-

- “मैंने कंस वध के लिए गोकुल छोड़ा सोचा अब मथुरा में रहेंगे चैन से उग्रसेन के राज्य में लेकिन जरासन्ध ने आक्रमण किया

...

...

ताड़, खजूर, नारियल और दूसरे पेड़-पौधे और झाड़-झंखाड़ तो थे। थोड़े ही दिनों में हम एक

बन्द मुट्ठी की तरह पाए गए

बँधी हुई, कसी हुई, तनी हुई।"[1]

संलाप- संलाप में एक से अधिक अर्थात् कम से कम दो प्रतिभागियों का होना आवश्यक है वक्ता तथा श्रोता। संलाप में वक्ता तथा श्रोता परस्पर भावों अथवा विचारों का आदान प्रदान करते हैं। आदान प्रदान के क्रम में दोनों की भूमिकाएँ परस्पर बदलती रहती है। इसमें दोनों के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर की स्थिति बनी रहती है।

उपन्यासकार काशीनाथ सिंह के विवेच्य उपन्यास उपसंहार में वार्तालाप प्रोक्ति का प्रयोग भरपूर मात्रा में देखने को मिलता है। जैसे-

- 'दारुक!' कृष्ण के मुँह से अपने आप निकला-'दारुक!'

  'कुछ कह रहे हैं भगवन् ?'

  ...

  'भगवान होने के लिए पत्थर होना जरूरी है क्या ??'

  'यह तो आप जानें भगवन्, मैं क्या जानूँ!"[2]

[1] उपसंहार, पृष्ठ-104

[2] उपसंहार, पृष्ठ-17

जब कृष्ण महाभारत युद्ध के पश्चात द्वारका में प्रवेश करते हैं तो कृष्ण,दारुक संवाद के माध्यम से काशीनाथ द्वारका की स्थिति का चित्रण करते हैं। इस संवाद के माध्यम काशीनाथ ने द्वारका की स्थिति और कृष्ण की मनोदशा का बखूबी चित्रण किया है।

कृष्ण जब द्वारका बसाने के रैवतक पर्वत का जायजा ले रहे थे तभी कृष्ण ने महसूस किया कि समुद्र थोड़ा पीछे हट जाता तो द्वारका को बसाने के लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता। इस दौरान कृष्ण और समुद्र के बीच हुए संवाद को लेखक ने वार्तालाप प्रोक्ति के माध्यम से चित्रित किया है। जिसका चित्रण इस प्रकार है-

- 'आज्ञा हो प्रभु!' एक स्वर सुनाई पड़ा।

कृष्ण को उसे पहचानने में देर नहीं लगी। वह समुद्र थे।

...

'कुछ नहीं, द्वीप से सटी बारह योजन जमीन चाहिए, बस!'

'केवल बारह योजन!'' समुद्र ने उल्लसित होकर कहा- 'जाइए, दूसरे काम देखिए, समझिए यह हो गया।'[1]

काशीनाथ सिंह ने संलाप प्रोक्ति का प्रयोग कर इस अभिव्यक्ति को सशक्त बनाया है।

लेखक ने कृष्ण के गाय प्रेम को चित्रित करने के लिए गालव और कृष्ण के वार्तालाप का मनोरम चित्रण किया है जो कृष्ण के गाय के प्रति करुणा को प्रदर्शित करता है। लेखक काशीनाथ सिंह लिखते है-

- उन्होंने हाँक लगाई– 'गालव!'

[1] उपसंहार, पृष्ठ-21

'हाँ महाराज!' गालव बोला-'इतनी रात को आप महाराज?'

कृष्ण ने इस पर ध्यान न देते हुए पूछा- 'यह उजली है क्या?'

'हाँ महाराज!' 'ब्या रही है क्या?'

'हाँ महाराज!'

कृष्ण ने हिदायत दी- 'माधव भी है न साथ में?...तो एक काम करना ! पुआल और भूसे पर मत गिरने देना बछिया को। ऊपर हाथों में ही पकड़ लेना। और ध्यान रखना उजली का !''[1]

काशीनाथ सिंह ने दारुक और कृष्ण के बीच संलाप प्रोक्ति के माध्यम से कृष्ण के घोड़ों के प्रति लगाव को दिखाया है और साथ ही इस प्रोक्ति में यह भी संकेत मिलता है कि घोड़े भी कृष्ण से दुखी है और वो दारुक को न पहचान कर कृष्ण के प्रति अपने विरोध को दर्ज कर रहे हैं। जैसे-

- ''कृष्ण ने देखा-पीछे दारुक खड़ा है जाने कब से?

  ...

  'वहीं से होता हुआ आया हूँ भगवन्! अभी महीना भी नहीं बीता कि घोड़े भूल गए मुझे पहचान ही नहीं रहे हैं।' कृष्ण एकटक दारुक को ताकते रहे, फिर आँखें घुमा लीं। वे भर आई थीं।''[2]

काशीनाथ सिंह ने इस प्रोक्ति के माध्यम से ऋषि, तपस्वियों के क्रोधी स्वभाव का संकेत किया है और कृष्ण के माध्यम से यह कहा है कि ये लोग हँसी मजाक नहीं समझते हैं। वार्तालाप प्रोक्ति के माध्यम से अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाया गया है।

उपरोक्तानुसार देखते हैं कि काशीनाथ सिंह जी का वार्तालाप प्रोक्ति और एकालाप प्रोक्ति दोनों पर सामान अधिकार रखते हैं। किसी भी रचनाकार की सबसे बड़ी उपलब्धि उसके संवादों की सशक्त

---

[1] उपसंहार, पृष्ठ-35

[2] उपसंहार, पृष्ठ-47

अभिव्यक्ति मानी जाती है। काशीनाथ सिंह जी इस मानक को बखूबी पूरा करते हैं। जो एक बड़े रचनाकार की भी पहचान है। इस शोध के निष्कर्ष के रूप प्राप्त सूत्रों की उपसंहार के माध्यम से आगे चर्चा की गई है। जिसमें इस शोध के अनुभवों से प्राप्त निष्कर्षों को लिखने का प्रयास किया गया है।

उपसंहार

साहित्य, समाज और साहित्यकार वस्तुतः तीनों एक दूसरे से अंतः संबंध रखते हैं। साहित्यकार अपने साहित्य में समाज का यथार्थ व सजीव चित्रण करता है। उपन्यास आधुनिक युग की सर्वप्रमुख प्रचलित विधा है। आधुनिक युग के प्रारंभ से ही उपन्यास लेखन की शुरुआत होती है। उपन्यास विधा के संदर्भ में प्रेमचंद का विचार है कि- "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

हिंदी कथा साहित्य में काशीनाथ सिंह का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने कथा साहित्य में समाज में घटित होने वाली घटनाओं का यथार्थ रूप में चित्रण किया है। काशीनाथ सिंह ने अपने कथा साहित्य में सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रिया का कलात्मक चित्रण किया है। उनके उपन्यास लेखन के क्षेत्र में 'उपसंहार', 'काशी का अस्सी, ‘महुआ चरित’ एवं ‘रेहन पर रग्घू’ इन सभी का शिल्प व कथानक अपने आप में विशेष है। काशीनाथ सिंह के शिल्प व भाषा को लेकर आलोचकों में काफी चर्चा होती है। काशीनाथ सिंह के कथा-साहित्य में सामाजिक सांस्कृतिक रूप में व्यक्त आधुनिक समाज का वर्णन मिलता है। आधुनिक समय में व्यक्ति इतना अधिक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है कि अपने समाज और परिवार के बारे में सोच नहीं पा रहा है। काशीनाथ सिंह का रचना संसार वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने कहानी, उपन्यास, संस्मरण, नाटक, आलोचना इत्यादि विधाओं में लेखन कार्य किया है। इनके रचना-कर्म में समाज की चिंता दिखाई देती है।

काशीनाथ सिंह के रचना कर्म में समाज और संस्कृति के विविध स्वर देख सकते हैं। इन्होंने समाज के साथ-साथ, संस्कृति को भी अपनी रचनाओं के केन्द्र में रखा है। ‘उपसंहार’ में काशीनाथ सिंह ने संस्कृति को नये रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। काशीनाथ सिंह ने जिस प्रकार ग्रामीण संस्कृति का चित्रण किया है, शहरी संस्कृति का चित्रण भी इन्होंने उसी प्रकार अपनी रचनाओं में किया

है। काशीनाथ सिंह की रचनाएँ नवीन दृष्टिकोण का परिचय देती हैं। उनकी दृष्टि कथा साहित्य की एक मुख्य विशेषता है। वे साहित्य के शिल्प को कथानक के विकास के साथ-साथ बनाते हैं। उनका पहले से बनाया कोई शिल्प दृष्टिकोण नहीं होता है। यहीं कारण है कि इनकी रचनाओं में शिल्प सहज प्रतीत होता है । किसी भी रचना का उचित मूल्यांकन रचना को सम्पूर्णता में देखने अथवा कथा-शिल्प को एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखने में है। मैंने इस शोध में भी यही प्रयास किया है कि 'उपसंहार' उपन्यास को सम्पूर्णता में देखते हुये उसके भाषा, शिल्प का मूल्यांकन व विश्लेषण किया जा सके। भाषिक विश्लेषण करने के क्रम में मैंने अनुभव किया कि यह लघु उपन्यास होने के बाद भी महाभारत जैसे विशाल कथानक के विषय को उठाकर कृष्ण और महाभारत दोनों के साथ न्याय करने में सफल हुआ है। यह उपन्यास मिथक को आधार बनाकर अपने समय व समाज से भी सम्पर्क स्थापित करता है। काशीनाथ सिंह 'उपसंहार' उपन्यास में कुछ ऐसे प्रश्नों को उठाते हैं, जिन्हें सामान्यता हम छोड़ देते हैं या विचार नहीं कर पाते हैं ।

इस लघु शोध के प्रथम अध्याय में मिथक और साहित्य से संबंध पर विस्तार से चर्चा की गई है। मिथक का साहित्य से संबंध प्राचीन काल से ही रहा है। मिथक और साहित्य से मेल के कोई भी रचना दीर्घ काल तक प्रासंगिक रहती है। इतिहास और पुराण किस प्रकार से एक दूसरे से जुड़ें हैं ये भी हम प्रथम अध्याय में देख पाते हैं। हिंदी साहित्य उपन्यास में मिथक की कथा का प्रारंभ व उसके विकास की चर्चा भी करते हैं। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी से लेकर काशीनाथ सिंह तक इस परंपरा का किस प्रकार से निवर्हन हुआ इसकी भी जानकारी हमें इस अध्याय से होती है। काशीनाथ सिंह के जीवन परिचय, व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के साथ उनके सम्पूर्ण रचना कर्म की जानकारी भी इस अध्याय से हमें प्राप्त होती है। इसी क्रम में मिथक और साहित्य के संबंध पर विस्तार से चर्चा करने के लिए अध्याय दो में मिथक उपन्यास का पौराणिक आधार पर, मिथक और संस्कृति के आधार पर उनका विवेचन किया गया है। विवेच्य उपन्यास 'उपसंहार' के पौराणिक तत्व व मिथकीय तत्व पर प्रकाश डाला गया है। संस्कृति के स्तर यह उपन्यास किस तरह अपना संबंध स्थापित करता है इसकी भी विस्तृत चर्चा इस

अध्याय के अंतर्गत की गई है। शैली किसी भी उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। शैली के आधार पर इस उपन्यास का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके साथ ही तीसरे अध्याय के अंतर्गत ‘उपसंहार’ उपन्यास का भाषिक विश्लेषण विभिन्न आधारों पर किया गया। मिथकीय शब्दों को किस रूप में काशीनाथ सिंह जी ने प्रयोग किया है। इसकी भी जानकारी इस लघु शोध के द्वारा प्राप्त होती है।

पौराणिक आधार होने पर भी काशीनाथ सिंह जी ने संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग हैं नहीं बल्कि आम बोलचाल की भाषा में कृष्ण की कथा को कहने का सफल प्रयास किया है। आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करने के कारण ही कहीं कहीं विदेशी शब्दों का प्रयोग भी दिखाई पड़ता है। जो पौराणिक कथा के बावजूद कहीं भी लय को बाधित नहीं करता है। मुहावरें के प्रयोग में हम देखते है कि ये मुहावरे सामान्य रुप से होने वाले ही हैं। जो संभवत: अनायास रूप से आम बोलचाल के रूप में सुनने को मिलते हैं।

काशीनाथ सिंह ने कृष्ण को मानव रूप में होने की त्रासदी का बड़ी बरीकी से चित्रण किया है। कृष्ण जाति व्यवस्था की पीड़ा को भी महसूस करते हैं। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने यादवों के अठारह कुलों का वर्णन किया है। इसके साथ ही ब्राह्मणों के बारे में भी अपना विचार व्यक्त करते हैं और बताते हैं कि वह किसी पर प्रसन्न हो जाएं तो उसे नारायण बना दें और असंतुष्ट हो जाए तो उसे राक्षस। दुर्वासा ऋषि के प्रसंग को इसी क्रम में समझने की आवश्यकता है। काशीनाथ सिंह 'अवतार' व ‘ईश्वर’ जैसी अवधारणा के प्रति भी हमें सचेत करते हैं। वे कृष्ण को बार-बार मानवीय रूप में हमें स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते हैं और उन दुर्बलताओं पर भी डालते हैं जो एक साधारण मनुष्य में होती हैं। महाभारत में हम जिस कृष्ण को अर्जुन को स्थित प्रज्ञ होने का उपदेश देते देखते हैं, उन्हीं कृष्ण को सामान्य मानव के रूप हम उत्तर महाभारत में दुःखी और विचलित देखते हैं। आधुनिक काल की ये प्रमुख विशेषता रही है कि वह ईश्वर को मनुष्य रूप में देखता है। मनुष्य केंद्रित जीवन दृष्टि पर आधारित होने के कारण ये समूचे लीलावाद और अवतारवाद को निरस्त करती है। जैसे- मैथलीशरण गुप्त लिखते हैं- ‘संदेश यहां पर नहीं स्वर्ग का लाया, धरती को ही स्वर्ग बनाने आया।’

कृष्ण का जन्म तो मानव अवतार के रूप में होता है किंतु उनकी मृत्यु अपने ही कुल द्वारा होती है। महाभारत में अपनों द्वारा ही अपनों की हत्या की जाती है। 'कर्म में ही निहित है फल' यह सूत्र वाक्य कृष्ण द्वारा कहा जाता है तो अंत में यही सूत्र खुद उनके ऊपर लागू होते हुए दिखता है। महाभारत से लेकर द्वारका तक अपनों द्वारा ही अपनों की हत्या की जाती है।

इस तरह हम देखते हैं कि काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास 'उपसंहार' में कृष्ण को एक नये रूप में देखने का प्रयास किया है जो सामान्य कृष्ण से पूरी तरह अलग हैं। यह उपन्यास आकार में लघु होने के बावजूद अपनी सशक्त अभिव्यक्ति के द्वारा वह कहने में सफल हुआ है जो उपन्यासकार इस उपन्यास के माध्यम से कहना चाहते थे। महाभारत युद्ध के बाद कृष्ण का जीवन किस प्रकार गुजरा? इस पर पहली बार काशीनाथ सिंह द्वारा प्रामाणिक रूप में लिखा गया । मिथक आधार के होने पर भी भाषा कहीं भी बोझिल नहीं होती है न ही पाठक से अलग होती है। आम बोलचाल की भाषा में पूरा कथानक अपने कथ्य को व्यक्त करने में सफल होता है। भाषिक दृष्टि से भी यह उपन्यास पूरी तरह सफल है । यही काशीनाथ सिंह की साहित्य में उपलब्धि है । इस शोध में हम यही देखते हैं कि वह जिस भी विषय को उठाते हैं उसके साथ पूरा न्याय करने में भी सफल होते हैं और यही एक साहित्यकार की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है।

कृष्ण कथा, पौराणिक कथा होने के बाद भी यह उपन्यास एक संक्षिप्त उपन्यास है। काशीनाथ सिंह जी का इस संदर्भ में मानना है कि आधुनिक समय में किसी के पास इतना समय नहीं है कि वह एक लंबे उपन्यास को पढ़ें। उनका मानना है कि जो कुछ भी लिखा जाये सार्थक लिखा जाये। कुछ भी अतिरिक्त और निरर्थक नहीं होना चाहिए। संभवतः इसी लिए काशीनाथ सिंह जी ने इस उपन्यास में एक नए शिल्प को चुना। विस्तार वाली कथाओं के लिए पद्य शैली को अपनाते हैं। उनका मत है कि भाषा का सबसे शक्तिशाली रूप कविताओं में निकल कर आता है। गद्य में ब्योरें ज्यादा होते हैं। फालतू ब्योरों से बचने के लिए मैंने इस शिल्प का चुनाव किया। यही कारण की यह उपन्यास संक्षिप्त होने के बाद भी अपने कथ्य को पूरी तरह से संप्रेषित करने में सफल होता है। कृष्ण कथा के चुनाव पर प्रकाश डालते

हुए काशीनाथ सिंह जी कहते हैं कि कृष्ण ही सभी भगवानों में ऐसे हैं जिनका जन्म की किसी राजघराने में नहीं हुआ है। कृष्ण एक सामान्य से गांव के ग्वालें के पुत्र के रूप में जेल में जन्म लेते हैं। उनका पालन-पोषण भी गांव के परिवेश में होता है। गांव से जुड़ाव के कारण और एक आम नागरिक होने के कारण वे कृष्ण की कथा का चुनाव करते हैं। जो गांव और आम आदमी के प्रति लेखक के जुड़ाव को प्रदर्शित करता है।

काशीनाथ सिंह जी ने अपने सभी उपन्यासों में नए नए प्रयोग किये हैं। पाठक को उनके लेखन में एकरसता का अनुभव न हो इसलिए उन्होंने अपने सभी उपन्यासों के कथानक और भाषा को अलग अलग रखने का प्रयास किया है। उनका प्रयास है कि जो भी लिखा जाय वह पुराना न हो उसमें नयापन हो। इसी नयेपन के लिए अलग अलग शैली अपनाते हैं जिसमें वे पूरी तरह सफल भी होते हैं। अपना मोर्चा उपन्यास से लेकर उपसंहार उपन्यास तक उन्होंने लगातार साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करने का काम किया है। जिसमें वह पूरी तरह से सफल भी रहे हैं।

काशीनाथ सिंह जी की भाषा पर अभी भी शोध की काफी संभावनाएं हैं। उनकी भाषिक संरचना ही उनकी ताकत है। इसी भाषिक संरचना के चलते उनकी कोई भी रचना पुरानी रचना से मेल नहीं खाती है, न ही एकरूपता का आभास कराती हैं। सामान्य रूप से काशीनाथ सिंह जी के साहित्य पर साहित्यिक दृष्टि से काफी काम हो रहा है किंतु स्वतंत्र रूप से भाषिक विश्लेषण पर अभी भी उतना काम नहीं हुआ है जितनी संभावनाएं इसके भाषिक संरचना में मौजूद है।

संदर्भ सूची

आधार ग्रंथ

1. उपसंहार, काशीनाथ सिंह, संस्करण-2016, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

सहायक ग्रंथ

1. मिथक और आधुनिक कविता, शम्भुनाथ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण-1985, दिल्ली
2. मिथक और साहित्य, डॉ. नगेन्द्र ग्रंथावली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण 1997, दिल्ली
3. हिन्दू मिथक : आधुनिक मन, शम्भुनाथ, वाणी प्रकशन, संस्करण 2019, दिल्ली
4. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरकांत, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2021, नई दिल्ली
5. उपन्यास कला और सिद्धांत, संपादक- विनोद तिवारी,अजय आनंद, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2016, दिल्ली
6. साहित्य सहचर, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2017, दिल्ली
7. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2021, दिल्ली
8. काशीनाथ सिंह- घर का जोगी जोगड़ा, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2018, दिल्ली
9. कहनी उपखान : काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 2003, दिल्ली
10. कामताप्रसाद गुरु, हिंदी व्याकरण, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण-2018, दिल्ली
11. गरिमा श्रीवास्तव, भाषा और भाषा विज्ञान, संजय प्रकाशन, संस्करण-2016

12. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषा विज्ञान, किताब महल प्रकाशन, संस्करण-1984, भूमिका
13. पुष्पपाल सिंह, 21वीं सती के हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2016, दिल्ली
14. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2015, दिल्ली
15. के.सी. सिंधु, रामकथा कालजयी चेतना, वाणी प्रकाशन, 2012, नई दिल्ली
16. डॉ. देवराज, भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में), चौखम्बा विद्याभवन, संस्करण-1961, वाराणसी
17. श्रीमद्भागवत गीता, गीताप्रेस, अध्याय-4, श्लोक-7,8, गोरखपुर
18. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा की वाक्य संरचना, साहित्य सहकर, संस्करण 1986, दिल्ली
19. पृथ्वीनाथ पांडेय, नालन्दा सामान्य हिंदी, नालंदा पब्लिशिंग हाउस, संस्करण-बींसवा, प्रयागराज
20. आचार्य जयेंद्र त्रिवेदी, हिंदी रूप रचना, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 1993, दिल्ली
21. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण, इलाहाबाद
22. अस्सी के काशी, गल्पेतर गल्प का ठाठ, संपादक- पल्लव, साहित्य भंडार, संस्करण-2015, प्रयागराज
23. जीतराम पाठक, भाषा विज्ञान सिद्धांत एवं स्वरूप, संस्करण 1991, अनुपम प्रकाशन
24. हिंदी संरचना, ईकाई 13, इग्नोउ नोट्स
25. काशी का अस्सी पाठ-पुनः पाठ, सं.- आशुतोष मोहन, साहित्य भंडार, संस्करण 2015, प्रयागराज
26. कल्याण, नारी-अंक, बाइसवें वर्ष का विषेषांक, कल्याण कार्यालय, गोरखपुर

पत्र- पत्रिकाएं

1. सोच विचार साहित्यिक पत्रिका, काशी के काशी, अंक-अप्रैल-2021, संपादक- आशीष त्रिपाठी, वाराणसी
2. संबोधन अंक : 1-2, वर्ष -अक्टूबर -जनवरी 2012, संपादक- कमर मेवाड़ी
3. काशीनाथ सिंह : आत्मतर्पण, हंस-1994, संपादक- राजेंद्र यादव, दिल्ली
4. चौपाल में रेहन पर रग्घू, अंक-1, वर्ष 1 जनवरी 2014, संपादक- कामेश्वर प्रसाद सिंह
5. बनास जन, संपादक- पल्लव, अंक-2, वर्ष 2009, दिल्ली
6. कासी का कहन, अंक- अगस्त 2000, संपादक- मनीष दुबे
7. लमही पत्रिका, अक्टूबर-दिसंबर-2004
8. दृष्टव्य : लेख, गुजरात समाचार, 15/09/2007

वेब-लिंक

1. https://www.hindwi.org/aalochna/raamsvarup-chaturvedi-aalochna
2. https://samalochan.blogspot.com/2017/09/blog-post_26.html
3. https://samalochan.blogspot.com/2014/09/blog-post_4.html
4. https://www.jankipul.com/2014/06/blog-post_5283.html

कोश

1. भारतीय मिथक कोश, उषा विद्यावाचस्पति, भूमिका, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली
2. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरकांत, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2021, नई दिल्ली

परिशिष्ट

साक्षात्कार

काशीनाथ सिंह जी से बनारस में उनके आवास पर **साक्षात्कार । दिनांक- 09/07/2022**

शोधार्थी- पौराणिक कथा का आधार होने के बावजूद भी आपने उपन्यास की भाषा में विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है । हिंदी भाषा में ऐसे भावों को व्यक्त करने वाले शब्दों की कमी है क्या?

काशीनाथ सिंह- भाषा और शिल्प को निर्धारित करता है विषय । आपका विषय क्या है? उस आधार पर भाषा बनती है कि क्या लिखा जाना चाहिए? कैसा लिखा जाना चाहिए? इसके विषय थे कृष्ण । कृष्ण एक पौराणिक चरित्र है । 'काशी की अस्सी' की भाषा में या बनारस की भाषा में कृष्ण के बारें में नहीं लिखा जा सकता था । हालांकि इस तरह के विषयों पर जितने भी लेखकों ने लिखा है काफी संस्कृतनिष्ठ हिंदी में लिखा है । लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया है इसलिए कि मेरे दिमाग में कृष्ण का खाका पौराणिक होते हुये भी आधुनिक कृष्ण का था । मुझसे बहुत पहले वी.पी. कुरियला यहां(बनारस) रहते थे और उन्होंने मुझसे कहा था की दरअसल कृष्ण एक तानाशाह आदमी था । कृष्ण का पूरा चरित्र एक तानाशाह, एक हिटलर का चरित्र था । जिसका अपना कोई स्वार्थ नहीं लेकिन जिसकी रुचि सिर्फ हत्याओं में थी । कौरवों की हत्या, राक्षस या शत्रु की हत्या । हालांकि हत्या शब्द पर एक पंडित जी भड़के थे, उनसे मैंने पूछा कि कृष्ण ने कितनी हत्याएं की थी? उन्होंने कहा उसे आप हत्या कहते हैं? विद्वान होते हुए। उसे वध कहना चाहिए आपको कि कृष्ण ने वध किया । मेरे दिमाग में कृष्ण की जो छवि थी वह बहुत कुछ एक डिक्टेटर की छवि थी । पौराणिक आख्यान लेते हुए मैंने भाषा बदलने की कोशिश की, हमारी कहानियों से या 'काशी के अस्सी' की भाषा से । विदेशी शब्दों के इस्तेमाल की बात जहाँ तक है वहाँ यह देखने की बात है वह पात्रों के बातचीत में है या वर्णन में है । अगर मेरे वर्णन में है तो संस्कृतनिष्ठ भाषा मैं छोड़ चुका था । उसमें नहीं लिखना था मुझे उपन्यास । इसलिए मैंने भाषा में काफी मनमानेपन या उदारतापन का परिचय दिया है । जब हम आज लिख रहे हैं तो भाषा जड़ क्यों

चुनी जाएं? किताबी भाषा क्यों चुनी जाए? ये आम लोगों की बोलचाल की भाषा में होना चाहिए। उसी आम बोलचाल की भाषा के क्रम में कुछ विदेशी शब्दों का इस्तेमाल वर्णन में हुआ होगा।

शोधार्थी- उपन्यास के लिए आपने महाभारत के मिथक (कृष्ण) कथा का चुनाव किया। इसके चुनाव की क्या प्रेरणा रही है?

काशीनाथ सिंह- दरअसल प्रेरणा ये रही है कि बचपन में हम भी गाय/भैंस चराते थे। गांव के आदमी थे, खेती बाड़ी करते थे, पोखर/तालाब में नहाया करते थे। हमें लगा कि गोकुल, कृष्ण जहाँ के रहने वाले थे, साधारण से ग्वाले के लड़के थे, जेल में पैदा हुए और आएं नंद बाबा के यहाँ, यशोदा के यहां जो गांव था, जिंदगी गांव की थी। जैसे गांव में गाय, भैंस चराते हैं वैसे गाय चराया करते थे। गांव के लड़के-लड़कियों के साथ खेला करते थे। देवताओं में जितने देवता रहे हैं अकेले कृष्ण रहे हैं जो राजपुत्र नहीं हैं। एक मामूली से गांव के लड़के रहे हैं, चुरा कर मक्खन खाना, मिट्टी खाना। दूसरे तरफ ये एक लोक चरित्र हैं, भगवान से इतर एक अलग तरह के भगवान की कल्पना की गयी है। जो किसी राजघराने से संबंधित नहीं हैं। उपन्यास में खुद वो कहते हैं कि जो राजा लोक को नहीं जानता, वह अपने राज्य को नहीं जानता। कृष्ण अगर द्वारकाधीश हुए तो द्वारका को ठीक तरह से जानने के कारण हुए। ग्वालों को जानने के कारण, सभी को जानने के कारण। कृष्ण नगर के नहीं थे। गांव के थे। यही कारण रहा है कि मैंने कृष्ण को चुना।

शोधार्थी- जाति व्यवस्था पर भी कई प्रसंग हमें इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं। क्या ये आधुनिक विमर्श को दिखाने का प्रयास है या स्वाभाविक प्रयोग है?

काशीनाथ सिंह- विमर्श को दिखाने का प्रयास नहीं है यह स्वाभाविक प्रयोग है। क्योंकि मथुरा से गये हुए द्वारका में बसे लोग प्रायः यादव थे। उन्हीं अठारह कुलों में ही लकड़ी का काम करने वाले थे, कुम्हार थे, लोहे का काम करने वाले थे। जाति व्यवस्था की तरफ हमारी नज़र नहीं थी। कृष्ण को

आक्रोश था प्रायः क्षत्रियों के प्रति। कंस, जरासंध, शिशुपाल सब घराने के थे, ये किसी न किसी रिश्ते में पड़ते थे कृष्ण के। द्वारका में जाति इस मायने में नहीं थी।

शोधार्थी- इस उपन्यास में आपने स्त्री पात्रों का वर्णन आधुनिक स्त्री विमर्श की दृष्टि से किया है क्या? या पौराणिक रूप दिखाने का ही प्रयास किया है।

काशीनाथ सिंह- रुक्मणी का प्रसंग महाभारत के अनुशासन पर्व में है। मुझे मालूम था इससे काफी लोग नाराज़ हो सकते हैं, हुए भी। पुस्तक छपने के दो तीन महीनों में ही जाने कहाँ कहाँ से फ़ोन कॉल आएं मुझे गालियां देते हुए। बोले तुम्हें लिखना ही था तो किसी और पर लिखते, अल्लाह पर लिखते, ईसा मसीह पर लिखते, तुम्हें लिखने के लिए कृष्ण ही मिले थे। इस तरह की ढेरों धमकियां आयी। राजकमल को भी इसी तरह फ़ोन कॉल गए थे- अशोक महेश्वरी जी के पास। फिर उन्होंने मथुरा के एक संत से कन्फर्म किया। फिर संत ने बताया कि ये प्रसंग अनुशासन पर्व में आता है। इसके लिए मैंने अनुशासन पर्व की किताब भी ली थी मैंने खुद भी वेरिफाई किया था।

शोधार्थी- इस उपन्यास को पढ़ने के बाद आप पाठक वर्ग से क्या अपेक्षा रखते हैं, जिस प्रभाव की अपेक्षा आपने की थी, क्या वह प्राप्त हुई?

काशीनाथ सिंह- मेरे दिमाग में ये तो था कि कोई चाहे जितना बड़ा हो हमेशा अकेला ही होता है। कृष्ण का अकेलापन सिर्फ कृष्ण ही समझ सकते थे। जो आदमी दुनिया को अपनी अँगुली पर नचाता था कौरव,पांडव सभी को। वह आदमी जब मरा तो एक बहेलिये के तीर से। कृष्ण के पास सारा कुछ था लेकिन कृष्ण अकेले ही थे। निरंकुशता का अंत कैसे होता है? पूरी दुनिया को नचाने वाला आदमी जब मरता है तो अकेला मरता है। कोई नहीं है न भाई, न कोई द्वारका का, पेड़ के नीचे लेटे हुए। जो मारता है उसकी कल्पना मैंने इस तरह की कि वासुदेव की तीन पत्नियां थी। घुमंतू राजा थे, जंगल में घूम रहे होंगें, वहाँ कोई आदिवासी लड़की देखी होगी, उसके तरफ आकृष्ठ हुए होंगे, संबंध बनाया होगा,

बेटा हुआ होगा। ऐसी मैंने कल्पना की है। वासुदेव का बेटा वह तो निश्चित रूप से यादव हुआ। अंत एक उदासी भरा है। आखिरी में यह उपन्यास उदास कर जाता है।

ज्यादातर लोग मानते हैं कि हम लोग पुराण, वेद, संहिताएं ये सब नहीं पढ़ते हैं, जानते नहीं हैं। इसलिए मुझे लिखना था। प्रगतिशील होते हुए भी हम यह जानते हैं, दिलचस्पी रखते हैं। ये बताना चाहिए पाठक को। ज्यादातर लोगों ने कृष्ण को भगवान के रूप लिखा लेकिन मुझे नहीं लिखना था ऐसे कृष्ण पर। सामान्य कृष्ण के बारे में लिखना था। जो किसी राजा का बेटा न हो, जो इसी यथार्थ की जमीन से पैदा हुआ हो। जितने भगवान थे उनमें से अकेले कृष्ण ही मुझे दिखाई पड़े जो हम जैसे गाँव के रहने वाले थे। जमीन से उठा हुआ एक आदमी कैसे आकाश तक जाता है और फिर जब उसका पतन होता है तो वो अकेला होता है। जैसे लिखा है चरम सफलता में निहित है एकाकीपन का अभिशाप। पाठकों द्वारा इस उपन्यास को काफी पसंद किया गया। अब तक कई संस्करण आ चुके हैं।

शोधार्थी- आपका प्रिय उपन्यास कौन-सा है?

काशीनाथ सिंह – मेरे सारे उपन्यास अलग-अलग हैं और जान बूझकर मैंने विविधता रखी है। एकरसता कहीं न मिले। इसलिए हर उपन्यास अलग-अलग तरह का है। सबसे जीवंत उपन्यास 'काशी का अस्सी' है।

शोधार्थी- इस उपन्यास के संक्षिप्त होने का कारण?

काशीनाथ सिंह- मैंने जान बूझकर उपन्यास की जो लय चुनी थी, जैसे कविताएं लिखते हैं। इसलिए कि भाषा का सबसे शक्तिशाली रूप कविताओं में निकल कर आता है। गद्य में ब्योरें ज्यादा होते हैं। फालतू ब्योरों से बचने के लिए मैंने ये शिल्प चुना। गद्य में वर्णन से लंबा हो जाता है। इसलिए संकेत रूप मैंने कथा को कम शब्दों में बताने के लिए इस तरह का प्रयोग किया। प्रायः मैं संक्षेपण का समर्थक हूँ। फालतू बातें न की जाएं। कहानियों में भी यही करता रहा हूँ और उपन्यासों में भी यही किया। यही कारण की आकार में ये छोटे रहे। छोटे इसलिए भी हैं कि जो लिखा जाए सार्थक लिखा जाए। आज

के समय में किसी के पास इतना समय नहीं है कि मोटी मोटी रचनाओं को पढ़ सके और अगर पढ़ना है तो महाभारत को पढ़िए, पुराणों को पढ़िए। जानी पहचानी चीजों से बचने की कोशिश की है कि कुछ नयापन हो।

शोधार्थी- अभी आप क्या लिख रहे हैं?

काशीनाथ सिंह - अभी तो बीमारी से जूझ रहा हूँ। लिखना चाहता हूं लेकिन लिख नहीं पा रहा हूँ।

शोधार्थी- हम से बात करने के लिए आपका बहुत बहुत धन्यवाद। आपने अस्वस्थ होने के बाबजूद अपना बहुमूल्य समय दिया इसके लिए आपका आभार।

AS PER THE UNIVERSITY POLICY, ANTI-PLAGIARISM SCREENING IS NOT REQUIRED FOR THE REGIONAL LANGUAGES

AS PER THE UNIVERSITY POLICY, ANTI-PLAGIARISM SCREENING IS NOT REQUIRED FOR THE REGIONAL LANGUAGES

Librarian
Indira Gandhi Memorial Library
UNIVERSITY OF HYDERABAD
Central University P.O.
HYDERABAD-500 046.